सनातनधर्मपताका का उपहार

महाराना प्रतापसिंह

(ऐतिहासिक उपन्यास)

अर्थात्

श्रीयुत हाराणचन्द्र रक्षित के "मन्त्रसाधन" का

आंशिक अनुवाद

प० रामस्वरूपशर्मा सम्पादक सनातनधर्म
पताका द्वारा लिखित

MAHARANA PRATAPSINGH

(HISTORICAL NOVEL)

OR

PIECCTRANSLATION OF MANTRASADHAN OF
HARANCHANDRARAKSHIT

"There is not A pass in the alpine Aravali that is not sanctified by some deed of Pratap, some brilliant victory, or oftener, more glorious defeat. Huldighat is the Thermopylæ of Mewar; the field of Deweir her Marathon."——"Tod's Rajasthan"

"लक्ष्मीनारायण" प्रेस मुरादाबाद में मुद्रित

सन् १९०४

मूल्य १ रुपया

श्रीहरिः।

लेखक का निवेदन.

मैं सब से प्रथम बाबू हाराणचन्द्र रक्षित को आन्तरिक श्रद्धा के साथ धन्यवाद देता हूँ कि जिनके "मन्त्रसाधन" का याथातथ्येन आंशिक अनुवाद करके मैं हिन्दी के सहृदय पाठकों के सन्मुख इस पुस्तक को पहुँचासका हूँ, इस पुस्तक में जो कुछ सौष्ठव है वह उक्त बाबूसाहब की ओजस्विनी वंगभाषा से ही आया है, मैं केवल निमित्तमात्र हूँ, बाबूसाहब की पुस्तक में से यमुना उपाख्यानको छोड़कर प्रायः शेष सब ही अंशों का यथावत् अनुवाद किया है, कारण कि-उस अंश में कोई प्रबल ऐतिहासिक प्रमाण न पाया, कहीं २ थोड़े में ही सब आशय आजाने से संक्षिप्त भी किया है यमुना के उपाख्यानको छोड़ने पर भी पुस्तक की रोचकता में कुछ त्रुटि नहीं हुई है, महाराना की जीविनी से सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सबही मुख्य २ विषयों का समावेश किया है, इस पुस्तक का प्रधान अवलम्बन महाशय टाड्साहब का राजस्थान है रचना उक्त बाबूसाहब की है, मारवाड़ी कविता 'ब्राह्मणपत्र' से लीगई है और हिन्दी अनुवादमात्र मेरा है, अब मैं यह हिन्दी अनुवाद उक्त बाबूसाहब को ही अर्पण करके, पाठकों के मनोरञ्जन की आशा करता हूँ।

रामस्वरूप-शर्म्मा

॥ श्रीहरिः ॥

महाराना प्रतापसिंह

प्रथम परिच्छेद।

"मेवाड के प्रकाश! राजपूत जातिकी आशा और भरोसे के स्थल! युवराज! आप इस दीन हीन कंगाल वेष में कहां जाने का उद्योग कर रहे हैं?"

दो प्रतिष्ठित राजपूत सरदार यह बात कहते हुए एक तेजस्वी नौजवान राजकुमार का मार्ग रोक कर खडे होगये।एक ने कहा हमारे जीवित रहते हुए सिंह के आसन पर कदापि गीदड नहीं बैठ सकैगा। अबतक देख रहा था कि कहांतक चपलता होती है युवा ने मौन रहकर एकबार सरदार की ओर को देखा। दूसरे सरदार ने कहा कि महाराज! अब से आप को महाराज कहकर ही पुकारूंगा महाराज! चलिये मेवाड़के राज सिंहासन पर बैठिये, सब सामन्त सरदार और प्रजाओं के आनन्द तथा आशा को पूर्ण करिये। इसबार युवा ने धीरे से कहा।' क्यों? कुमार जगमल!' यह सुन पहिले सरदार ने कहा महाराना अब इन बातों का काम नहीं है, आप अभी देखेंगे कि सारा मेवाड़ एक स्वर से प्रीति के साथ'महाराना प्रतापसिंह' इस नाम को पुकारकर अपने को अहोभाग्य समझता है। बूढे सरदार ने सन्मानसूचक स्नेह के साथ युवा का दाहिना हाथ धीरे से पकडा फिर मुसकुरा कर कहा कि मैं तुम्हारा हाथ पकड के मार्ग रोके खडा हूँ, देखता हूं आप किस

भकार जायँगे ? । तब तो युवा ने अपनी स्वाभाविक गंभी-रताको कुछ शिथिल कर दूसरे सरदार के मुख की ओर को देखते हुए धीरेसे कहा कि बात क्या है सब साफ साफ कहो ? दूसरा सरदार बोला समय पर आप सबही सुनेंगे और जानेंगे इससमय केवल इतना ही कहूंगा कि मेवाड का राजछत्र और रत्नसिंहासन आपका है, जगमल क्या और किसी का भी नहीं, युवाने पहिले सरदार से कहा कि तो अबतक यह अधर्म का कार्य क्यों होता रहा ? और आपने उसका कोई उपाय क्यों न किया ? पहिले सरदार ने उत्तर दिया कि मैं कहता चुका हूं कि देखता था कहां तक चपलता होती है, जो होना था होगया अब चलिये राजपूत जाति की सनातन मर्यादा को रखकर धर्मशास्त्रानुसार आपही मेवाड़ के राज-सिंहासन को उज्वल करिये । युवा बोला यदि कोई विघ्न आपडे या राज्य में विद्रोह फैलजाय तो ? पहिले सरदारने मुसकुराकर कहा महाराज ! धर्मशास्त्र और लोकाचार के विरुद्ध किसी कार्य की क्या कभी जय हुई है ? और यदि दैववश ऐसा होभी जाय तो यह दास अपने अधीन सब सरदार और राजपूत सेना को लेकर उसके विरुद्ध खडा होगा । यह सुनकर युवा ने दोनों सरदारों का कथन स्वी-कार कर लिया ।

बात यह है कि-जब उदयपुर के राना उदयसिंह का दे-हान्त हुआ तो उनके सूने सिंहासनपर उनका छोटा पुत्र ज-गमल बैठगया बडे के होतेहुए छोटेका राजसिंहासन पाना धर्मशास्त्र और लोकरीति के विरुद्ध है यह जानकर भी उद-यसिंह मरने से पहिले छोटे कोही राजसिंहासन मिलने का प्रबन्ध करगये थे इसका कारण यह था कि-वह सब रानियों

की अपेक्षा जगमल की माता से अधिक प्रेम रखते थे। परन्तु सरदार और मंत्रियों को यह धर्महीन कार्य अच्छा न लगा उन्होंने मृत रानाके बड़े पुत्र प्रतापसिंह को ही राज्य का अधिकारी ठहराया। प्रतापसिंह झालोराधिपति के भानजे बुद्धिमान तेजस्वी स्वाधीनताप्रिय और उदारचित्त होनेसे सर्व प्रकार राज्य पाने के योग्य थे। अधिक क्या कहें झालोर के महाराज गुप्त रीति से भानजे को न्यायानुसार राज्य दिलाने के लिये राजपूत सरदारों को उकसाने लगे। उनके उद्योग से ही एक मुखिया सरदार सब का अगुआ बनकर इसकाम के करने को चला यह सरदार चन्दावत वंश का एक प्रतिष्ठित चन्दावतकृष्णनाम वाला राजपूत था, यह कृष्ण और उनका सहचर दोनों ने सिंहासन न मिलने से राज्य को त्यागने में उद्यत हुए खिन्न चित्त युवा प्रतापसिंह के पासजाकर अपने मनका वृत्तान्त कहा और उनको समझाकर लौटालाये। यह घटना आज से प्रायः साढेतीन सौ वर्ष पूर्व की है।

दूसरा परिच्छेद।

इधर बड़े आनन्द के साथ अपने अनन्य सेवकों को लेकर बालक जगमल जो सिंहासन पर बैठने का सुख भोग रहेथे मुखिया सरदार चन्दावतकृष्णने तहां प्रतापसिंह को लेजाकर उस विमल सुख में बाधा डालदी, प्रतापसिंह के साथ चन्दावत को आते हुए देखते ही बालक जगमल चौंकउठा फिर जब उस तेजस्वी वीर चन्दावतने धीरे२ उस के सिंहासन के सामने आकर गम्भीर स्वर से कहा कि कुमार! तुम्हें बडा धोखा हुआ है, तब तो मानो उनको होश हुआ

और सुख का स्वप्न भंग होगया विचारनेलगे कि जब मैंने राजपद पालिया है तो भी सरदार ने मुझे कुमार कह के क्यों पुकारा ? इतने ही में सरदार ने धीमे स्वरसे फिर कहा कि कुमार आपको बडा धोखा हुआ है यह सिंहासन आप का नहीं है जिनका है वह यह खडे हैं शीघ्रही महाराना प्रतापसिंह की प्रतिष्ठाकरो यदि बुद्धिमान् होते तो जगमल तत्काल सिंहासन को छोडकर खडे होजाते क्योंकि जगमल और उनके साथी लोग चन्दावतकृष्ण को भलीप्रकार जानते थे, इन शक्तिमान् पुरुषने प्रतापसिंह को साथ लेकर जब सबके सामने इतनी बडी बात कही तो तो क्या उसके सामने चुपचाप बैठा रहना चाहिये था ?। कार्य कुशल चन्दावत ने और कुछ न कहकर धीरे से जगमल के दोनों हाथ पकड कर सिंहासन से उतार लिया और सन्मान के साथ प्रणाम करके प्रतापसिंह के दाहिने हाथ को पकडकर धीरे २ उस सूने सिंहासन पर बैठादिया । जगमल और उनके साथी सब मौन बैठे रहे । प्रतापसिंह को सिंहासन परबैठाकर उस वीर पुरुष ने अपने हाथ से प्रतापसिंह के सिरपर राजमुकुट और कमर में तलवार पहिरादी तब सब घुटनों के बल बैठकर तीनबार प्रणाम करके कहने लगे–जय मेवाडपति की जय ! जय महाराना की जय ! जय महाराज प्रतापसिंह की जय ! समीप में ही उनके अनुचर और सेना के योधा पंक्ति बांधे खडे थे वह सबभी जय शब्द को सुनते ही बार२ जय ध्वनि करनेलगे । उससमय किसी को और कुछ न कहना पडा सब अपने २ काम पर उद्यत होगये, जो छत्रवाला कुछ समय पाहिले जगमल के सिरपर राजछत्र लगा रहाथा उस ने बढाकर नये महाराना के सिरपर छत्रलगा दिया, जो

चँवर डुलानेवाले दो सेवक मुहूर्तभर पहिले जगमल के ऊपर चँवर डुलारहे थे वह अपराधी की समान कांपते हुए प्रताप- सिंह के शिरपर चँवर डुलाने लगे जो वन्दीजन अभी जगमल्ल का गुणगान कर रहे थे वह अब दुगने उत्साह के साथ नये मेवाडपति की वन्दना करने लगे औरों की तो बात ही क्या स्वयं घडीभर पहिले के महाराना जगमल भी समय देखकर साथियों सहित प्रतापसिंह की जयजयकार बोलने लगे।

इच्छित काम को सिद्ध करके वीरचन्दावत कृष्ण ने शान्ति पूर्वक अति विनय के साथ जगमल से कहा कि-कुमार! बूढे सरदार का अपराध न समझना, मैंने मेवाड के परिणाम को विचार कर तथा धर्मशास्त्र और लोकरीति की मर्यादा को देखकर स्वर्गवासी महाराना के बडे पुत्र को ही राजसिंहा- सन दिया है, इस के सिवाय नये महाराना सर्वथा राजसिं- हासन के योग्य हैं। फिर प्रतापसिंह की ओर का देखकर कहा कि हे राजपूतकुलतिलक! अपने विशाल ललाट, चौडी छाती, जानुपर्यंत लम्बे भुजदण्ड वीरदृष्टि और तेजसे दमकते हुए मुखमंडल को सार्थक करिये आपसे ही चित्तौरका उ- द्धार और राजपूतजाति के वीरवृतका उद्यापन होगा जो तलवार आज मैंने अपने हाथ से आपकी कमर में बांधी है वह चित्तौर की अधिष्ठात्री देवी के हाथ का खड्ग है। पापी यवनों ने चित्तौर को स्वाधीन करके माताका मंदिर अपवित्र किया, माता की भुवनमोहिनी मूर्त्ति को धूल में लुटाया,हाय! वीर राजपूत जाति के पृथ्वी पर होते हुए यह अनर्थ हुआ। गरम सांस के साथ चन्दावत के नेत्रों में से टप २ गरम आंसू गिरने लगे। यह दृश्य देखकर तहां बैठेहुए सब राजपूतों का मुख तमक उठा, सिंहासन पर बैठे हुए प्रतापसिंह के नेत्रों में

मानों धक २ अग्नि जलने लगी उन्हों ने तलवार एक साथ म्यान से निकाली और कुछ एक सावधान होकर सरदार के मुखकी ओर को देखा। चन्दावत कृष्ण फिर कहने लगे कि वह माता के हाथ का खड्ग आज मैंने अपने हाथ से महाराना की कमर में बांधा है, मुझे आशा है कि महाराना ही इस खड्ग की मर्यादा को बनाये रखेंगे। एकर करके अनेकों ने इस खड्ग को ग्रहण किया सब ने ही चित्तौर के उद्धार की प्रतिज्ञा की, समयरपर आशा भी पूर्ण हुई, किन्तु हाय! कालवश वह स्वर्गसमान चित्तौर फिर यवनों के हाथ में पहुंचगई, परन्तु न जाने क्यों आज मेरा अन्तरात्मा कहता है कि-महाराना प्रतापसिंह ही राजपूत जाति की लज्जा रखेंगे इस लिये हे मेवाडपति! वीर व्रत को धारो मुगलों के ग्रास से राजस्थान की रक्षा करो। हे नरनाथ! चित्तौर के विधवा वेश को दूर करके सकल मेवाड के एकछत्र स्वामी बनो, यह सुन प्रतापसिंह ने दृढ प्रतिज्ञा के साथ, क्रोध के कारण गद्गद हुए कंठ से गंभीर स्वर में कहा कि सरदार वीर! जो कुछ सुनना चाहिये मैंने सब सुनलिया आज अधिक न कहकर केवल इतनाही कहता हूँ कि यदि जीवित हूं तो जीवनव्रत का उद्यापन करूंगा।

तीसरा परिच्छेद।

आज अहेर करनेवाली राजपूत जाति के बडे आनन्दका दिन है सारे मेवाडकी राजपूत जाति आज वीरधज से सजकर आनन्द के कोलाहल से चारों दिशाओं को गुंजाररही है सहस्रों राजपूत वीर हाथमें तीखा बरछा कन्धे पर तीखे बाणोंका भाथा और धनुष, मस्तकपर क्रीट कपोलोंपर लाल-

चन्दन की रेखा मुखमें हर हर महादेव की ध्वनि धारण करके घोडों पर सवार हो वीरदर्प से पृथ्वी को कँपातेहुए आज दलके दल एक स्थानपर इकट्ठे हुए हैं आज अहेर का उत्सव है आज राजपूतों के भाग्यकी परीक्षा का दिन है, सालभर का फलाफल जानने के लिये चारों ओर पर्वत से घिरेहुए एक चौंडे मैदान में नियमित समय पर सब इकट्ठे होगये, आज राजपूत वीरों की आनन्द दायक मृगया (शिकार) होगी। वीरता के साथ शूकर का शिकार करके, उस शूकर को इष्ट-देवता के सामने बलि देकर राजपूत वीर आज भविष्यत् के फलाफल को जानने के लिये उत्सुक होरहे हैं। स्वयम् महाराना प्रतापसिंह सकल परिवारके वीरों सहित आज इस उत्सव में आकर मिले हैं, महाराना सब के बीच में खडे होकर कहनेलगे कि वीरों समझ रखना आज इस शिकार में मेवाड के भाग्य की परीक्षा होगी आज के दिनका यह उत्सव राजपूतों का एक व्रत है इस व्रत के उद्यापन में प्राण देदेनाही राजपूतों का धर्म है नहीं तो केवल षोडशोपचारके साथ घंटा बजाकर देवी के सामने वराहकी बलि देनेसेही कार्य सिद्ध नहीं होगा माता के सामने वन के वराह की बलि देना हो दो परन्तु केवल इस बलिदान से ही व्रत का उद्यापन नहीं होगा। जो राजपूत जाति,राजपूतों की स्वाधीनता और जो सारे मेवाड के शत्रु हैं उन मुगलों के ग्रास से जननी जन्मभूमिका उद्धार करने के लिये तन मन वाणी से देवी के सामने प्रार्थना करना ही इस व्रतका वास्तविक प्रयोजन है। देखो इस मेवाड़ की छाती पर आज कितने दिनों से पठान और मुगलों ने कितनी वार घृणाके साथ मरमभेदक ठोकरें लगाई हैं उस अत्याचारी अलाउद्दीन से लेकर अकबरतक मेवाड

की कितनी दुर्दशा हुई है सोने की चित्तौर आज पराधीनता की जंजीरों से बँधीहुई है प्यारा राजस्थान आज शत्रुओं के चरणों से कुचलगया है। राजपूत रमणी सती पद्मिनी ने यवनों के अत्याचार के भय से अपने पवित्र शरीरको अग्नि में भस्म करदिया। इसीप्रकार न जाने कितने सुवर्ण के फूल जलकर छार होगये। बाप्पाराव के वंशधर भीमसिंह से लेकर संग्रामसिंह तक कितने योधा अपने देशकी रक्षा के लिये असमय में ही कालके गाल में चलेगये। हाय! तब भी विधाता को दया न आई मेवाडभूमि स्वाधीनता पाकर गौरवमयी न होसकी।

दैवी घटना को मनुष्य कैसे दूर करसकता है? इतना कहतेर वीर प्रतापसिंह का वीर हृदय क्षणभर के लिये आर्द्र होगया गद्गद कण्ठ होजाने के कारण क्षणभर को रुककर महाराना फिर कहनेलगे कि—भ्रातृगण! तथापि हम को प्राणों की बाजी लगानी पडेगी इष्टदेवको प्रसन्न करने के लिये परमपुरुषार्थ करना होगा कठोर व्रत को ग्रहण करे विना यथार्थ ब्रह्मचर्य्यका पालन करे विना इस महाव्रतका उद्यापन नहीं होगा, भगवतीको प्रसन्न करना ही हमारा सब से पहिला काम है उस सर्वसिद्धिदायिनी भवानी के प्रसन्न होनेपर हम धीरेर सब कुछ पाजायंगे। आओ अब सब उत्साह के साथ वराह का शिकार करके माता की पूजाको पूरा करें इस पूजा के अनन्तर, मैं जिस महापूजा में तत्पर होऊंगा आशा है सब राजपूत वीर सच्चे चित्त से उस में सहायता करेंगे सब मिलकर एकबार कहो कि—

'कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम्' उस समय उन सहस्त्रों राजपूत वीरोंके मुखसे समुद्र के गर्जने की समान इस महावाक्यकी ध्वनि निकली!

कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम् ' आकाश पर्वतों की गुफा समीप के जंगल और नदियों में से भी मानों यही गुंजार निकलनेलगी उससमय महाराना को चारोंओर से उसी महामन्त्र की ध्वनि सुनाई दी । तो क्या इस उद्योग में वह सफल मनोरथ नहीं होंगे ? महाराना कहनेलगे कि फल भगवान् के हाथ है तुम्हरा हमारा उसकी चिंता करना वृथा है, सबलोग सच्चे चित्तसे प्रेम के साथ अपना अपना काम करो काम कभी निष्फल नहीं होता जीवन और काल दोनों अनन्त हैं, किसी न किसी जीवन में और किसी न किसी काल में तुम्हारा मनोर्थ अवश्यही सिद्ध होगा ।

चौथा परिच्छेद ।

राजपूत वीरों ने गहनवन में जाकर वराह का शिकार किया उसका विधिपूर्वक माता के सामने बलिदान करके अहेर के अनन्दोत्सव को पूरा किया । उन्होंने माता की पूजा में इस वर्ष को शुभ माना । समझा कि महाराना प्रताप सिंह अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये जीवन के निर्मल प्रारम्भकाल में ही एक अपूर्व वीर व्रत को धारकर चिरकाल को जगत् भर के पूजनीय होंगे। किन्तु हाय ! इस महाकार्य के उठान में ही एक बडी अशुभ घटना होगई । जब राजपूत वीर वन में चारों ओर वराह के शिकार में लगे हुए थे उसी समय महाराना प्रतापसिंह और उन के छोटे भाई शक्तसिंह में परस्पर एक बडेभारी वैमनस्य की नींव पड़गई । जिस समय सब अपनी २ वीरता दिखाने और यश को फैलाने में मुह उठाये हुएथे उस समय प्रताप सिंह और शक्तसिंह दोनों भ्राताओं की एक साथ एकही

शिकार पर दृष्टि पड़ी, उन्होंने समीप में ही एक वराह देखा, दोनों भ्राताओं के भयदायक प्रताप और वीरमूर्त्ति को देखते ही वराह प्राण बचाने को भागने लगा परन्तु भाग कर जाता कहां ? दोनों भाइयों ने एकसाथ ठीक एकही प्रकार के तीखेवाण वराह पर छोड़े उन में से एक वाण से वराह का मस्तक बिधगया और दूसरे वाण का निशाना कुछ एक चूकजाने से वह व्यर्थ होगया, उस एक तीखे वाण से ही वराह का कपाल खुलगया और उसने दुःख से चिकारते हुए उसी समय प्राण छोड़ दिये। दोनों भाई सेवकों सहित उस मरेहुए वराह के पास आये। बस इसी समय से उनमें परस्पर वैमनस्य का प्रारम्भ हुआ। शक्त-सिंह का एक प्यारा सेवक कह उठा कि आहा ! महाराज कुमार का कैसा अचूक निशाना है ! एक वाण से ही इस बड़भागी वराह को प्राणहीन करदिया। प्रतापसिंह ने उस सेवक की ओर को त्योरी चढ़ाकर देखा उसी समय वह सेवक कांपनेलगा उसको इतनाभी साहस न हुआ कि वह फिर ऊपर को नेत्र उठाकर देखसके। पाठक समझही गये होंगे कि महाराना प्रतापसिंह का ध्यान था कि मेरे ही अचूक निशाने से यह वराह गिरा है। बुद्धिमान् शक्तसिंह ने यह दशा देखकर जानलिया कि मेरे सेवक के ऐसा कहने से म-हाराना को क्रोध आगया बडे भाई से कुछ न कहकर शक्त-सिंह अपने सेवक की बातको यथार्थ सिद्धकरने के लिये से-वक से कहनेलगे कि यदि मेरे अचूक निशाने का और भी प्रमाण देखा चाहो तो यह देखो मैं इस समीप के वृक्षकी डा-ली में के असंख्य पत्तों में से इस तीसरे पत्ते को यहां से ही वेध देताहूं। इतना कहकर उन्होंने उसपत्ते को वेध दिया,तब

तो उन के उस सेवक सहित और सेवक भी वार २ उनकी धनुर्विद्या को सराहनेलगे।

पाठक समझगये होंगे कि महाराना की समान शक्तसिंह के मन में भी अटल विश्वास था कि मेरे ही अचूक निशाने से वराह का मस्तक विधा है। दोनों के एक से वाण एकसाथ ही छूटे थे दोनों वाणों में कोई ऐसा चिन्ह नहीं था कि जिस से निश्चय करने में सुभीता हो। अभिमान और क्रोध ने हृदय में घुसकर महाराना को बहुत ही उत्तेजित किया, प्रतापसिंह ने गम्भीरता के साथ छोटे भाई से कहा कि शक्त सिंह! क्या तुमभी असार स्वार्थीपना दिखाते हो? ऐसी अपनी बड़ाई करना तुच्छ प्रकृतिवालों को सोहता है, सिसोदिया वंश वालों के मुख से ऐसी चपलता अच्छी नहीं मालूम होती। शक्तसिंह यह सुनकर चौंकउठे और कुछएक आवेश में आकर कहने लगे कि भइया! मुझे यह आशा नहीं थी कि तुम्हारे मुख से ऐसी तुच्छ और अनर्गल वात सुनूंगा क्या आपका यह अभिप्राय है कि यह वराह आपके ही वाण से विधा है और मैं आपके गुण को छिपाकर अपनी मिथ्या कार्यवाही दिखाता हूं? महाराना ने गंभीर स्वर से उत्तर दिया कि हां इस में क्या सन्देह है! यह सुन शक्तसिंह ने 'नहीं! कभी नहीं!' ऐसा कहकर अपने वरछे की नोक दृढता के साथ क्रोध में भरकर सामने पड़े हुए पत्थर पर मारी, जिस से वह पत्थर टुकडे २ होगया, यह देख महाराना ने कहा कि क्या मेरेही सामने इतनी ढिठाई? शक्तसिंह अब भी आपेको सम्हालो। शक्तसिंह ने कहा कि माता पिताके आशीर्वाद से मैंने वास्तविक आत्मसंयम सीखा है परन्तु ऐसा कायरों की समान सत्य को छुपाकर असत्य दिखाना कभी

नहीं सीखा, महाराना ने कहा कि शक्त ! ध्यान है कि तुम किस के साथ बात कर रहे हो । अब भी कहता हूं कि सावधान होजाओ, बातों २ में दोनों का क्रोध बढगया, दोनों के ही हृदय में दारुण अभिमान की आग भड़क उठी जिसका परिणाम बड़ा ही अनर्थकारक हुआ । इससमय शक्तसिंह संबन्धको भूलकर अपने अधिकारकी सीमाको लांघ सबके सामने बड़े भाई से कहने लगे कि उच्चपद और प्रभुता को पाकर सबही आपे से बाहर होजाते हैं अपनी चतुराई और हठ को रखने के लिये असत्य को भी स्वीकार करते हैं आज मैंने इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पालिया, ऐसा वैसा पुरुष नहीं साक्षात् मेवाड के नये महाराना प्रबल प्रतापी प्रतापसिंह ही इस के साक्षी हैं ? । यह बातें विषैले बाण की समान प्रतापसिंह के हृदय के पार होगई उन्होंने एकबार लाल लाल नेत्रों से शक्तसिंह की ओर को देखा उनका चरण से लेकर मस्तक पर्यन्त सब शरीर क्रोध से जल उठा इसबार उन्होंने वज्र समान कठोर स्वर में छोटे भाईसे कहा कि शक्त! अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है मरने के लिये तयार होजावो आज भाई के खूनसे .... । मुख से पूरीबात न निकली दारुण अभिमान और क्रोध से उनका कंठ रुकगया यह सुन शक्तसिंह को भी अत्यन्त क्रोध आगया, स्थान समय सम्बन्ध और परिणाम को भूल कहने लगे कि राजपूत होकर राजपूत को भय दिखाना विडम्बना मात्र है क्या आप मेरे बालकपन की बातों को भूल गये ? महाराज याद है तो क्या इस तरुण अवस्थामें सत्य की मर्यादा को रखने में असमर्थ होकर प्राणों के भयसे डरूंगा ? जब मैं पाँच वर्ष का था पिताजी की एक तलवार बनकर आई थी, उसकी धार

की परीक्षा के लिये कई एक मोटे सूत इकट्ठे करके काटने की ठहराई, तब मैंने, हाडमास को काटनेवाली तलवार की सूतपर परीक्षा होना उचित न समझकर अपनी अंगुलि पर उसकी परीक्षा की थी ? आइये मैं तयार हूं। मतापसिंह के नेत्रों में धक२ अग्नि जलने लगी वह अति क्रुद्ध होकर गरजउठे, कि अब वृथा बकवाद करनेकी आवश्य कता नहीं है, मतापसिंह बातें नहीं चाहता काम चाहता है, तत्काल दोनों भाईयों ने म्यान से तलवार निकाली और परस्पर प्रहार करने को खड़े होगये, उस समय दोनों की भयावनी मूर्त्ति को देखकर तहां खड़े हुए सब लोग नेत्रों को मूंद कर हृदय में इष्ट देवता का स्मरण करने लगे, सब ही मौन और चेष्टारहित काठकी पूतलियोंकी समान खड़े थे, केवल समीप में खड़े हुए एक महात्मा का हृदयसमुद्र हिलौरैं लेने लगा, वह उदार चित्त महात्मा औरों का हित चाहने वाले वीर पुरुष इस महामलयकारी भयानक घटना को देखकर सर्वनाश होता समझ उन्मत्त की समान तहां आगे को बढे, उस परहितकारी परम सौम्यमूर्त्ति को देखकर सबही ने अचंभे में होकर मार्ग छोड़ दिया। तदनन्तर वह परम तेजस्वी पुरुष अपने माणों को तुच्छ समझकर जलते हुए अग्निकुंडकी समान उन दोनों भ्राताओं के मध्य में जाकर खड़े होगये, इन महात्माने एकवार दयामय नेत्रोंसे दोनों भाईयों के मुखकी ओर देखा और कहने लगे कि थमो धीरज धरो, मैं दुहाई देता हूं एकजना शान्त होजाओ, यह क्रीड़ा भूमि है, युद्धभूमि नहीं है और भाई २ में युद्ध होना वास्तविक क्षत्रियों का धर्म नहीं है, लड़ाई बन्द करो तुम्हारे भाले वैरियों के हृदय में मविष्ट हों तथा यह थोड़े शत्रु शो-

णित की सरितामें तरनेके योग्यहैं। वंश की मर्यादाको मत नष्ट करो, महापुरुष वाप्पाराव के पवित्र कुल को कलुषित न करो देखो! भाई के रक्त से भाई के शस्त्र की पवित्रता नष्ट होना उचित नहीं है। इस प्रकार कहते हुए उस महात्मा के मुखपर मर्मवेधी कातरता और हृदयकी व्याकुलता प्रतीत होनेलगी,परन्तु उससमय दोनोंभाई उन्मत्तहोकर हित अहित के ज्ञानसे शून्य होरहे थे, उस महापुरुष की प्रार्थना उनके हृदय को न खेंचसकी,किन्तु वह और अधिक उत्तेजित होकर शीघ्रही अपना मानस सिद्ध करनेकोयत्न करनेलगे। असंख्योंपुरुष जड़सेवनेहुए,उस शोकदायकनारकीय घटनाको केवल देखते ही रहे, केवल एकही महात्माने उन को रोकने का संकल्प किया, जैसे वह दोनों भ्राता परस्पर का प्राण लेने को दृढ़संकल्प करे हुए थे तैसे ही दोनों भ्राताओं की प्राणरक्षा के लिये, राजकुल के हित के लिये और मातृ भूमि मेवाड़ के मंगल के लिये इन पवित्रस्वभाव महात्मा ने भी दृढ़ संकल्प करके एक आश्चर्य उपाय विचारा। उन दोनों भाइयों की नंगी तलवारों के बीच में खड़े होकर कहनेलगे कि तौ क्या राजा और राजभ्राता कोई भी ब्राह्मण की विनय को नहीं मानेगा? तौ क्या कोई भी मेवाड की भावी दशा का विचार न करेगा? वृथा अहंकार में उन्मत्त होकर अपने चरणों से अपनाही शिर कुचलना चाहते हो तो कुचलो? परन्तु मैंने अपने कर्त्तव्यका पालन किया, मैं राजपुरोहित हूं, वंशपरम्परा से हमलोग राजकुल की हितकामना करते आये हैं,और आजभी यही कामना है, महाराना! ....। यह सुन प्रतापसिंह ने कहा देव ! क्षमाकरो, वात वहुत वढगई अव उपदेशका समय नहींहै। जरा थमिये

मैं अभी कार्य को समाप्त करके आप के चरणों को प्रणाम करता हूं, इतना कह प्रतापसिंह शीघ्रही हाथ में तलवार घुमातेहुए शक्तसिंह के अति समीप आकर खड़े होगये, शक्तसिंह भी अतिक्रोध में भर तलवार चलाते हुए सामने आडटे। दोनों ही अस्त्रविद्यामें पूरे थे, इसकारणही जय पराजय होने में कुछ विलम्ब हुआ। परन्तु इस में कुछ सन्देह नहीं है कि शीघ्रही उन दोनों में से एक अथवा दोनों ही मरण को प्राप्त या अत्यन्त घायल होंगे, राजकुलके हितैषी उन महात्मा ने अब की वार दूसरे शिष्य से कहा कि शक्तसिंह मैं विनय करता हूं शान्त होजाओ। यह सुन उन्मत्त की समान तलवार घुमातेहुए शक्तसिंह ने हँसकर उत्तर दिया कि अभी शान्त नहीं होसकता, अब तो अपमान करने वाले वडे भाई के प्राण लेकर ही शान्त होऊंगा। तदनन्तर दोनों की तलवार खटकने लगी। उससमय वह महात्मा राजपुरोहित फिर दोनों के वीच में जाकर खड़े होगये परन्तु सब चेष्टा वृथा हुई दोनों में से कोई शान्त न हुआ, तब तो पुरोहित उन्मत्त की समान हुंकार करके कहने लगे कि अच्छा! तो किसी ने नहीं सुना! दोनों में से किसी ने मेरी वात नहीं रक्खी तो अब मैं अपना काम करता हूं! ....। हे आकाशचारी देवताओं! दोनों राजभ्राताओं की रक्षा करो, राजकुलका मंगल करो, सिसोदियावंश का राजच्छत्र अटल रक्खो, इनके जीवित रहने से समयपर मुगलों के कराल ग्रास से देश की रक्षा होगी, जन्मभूमि स्वाधीन होगी, सारी राजपूत जाति का मुख उजला होगा, नहीं तो इस आपस के विद्रोह से इन भ्राताओं के रुधिर का परिणाम वडा भयानक होगा। यह नरक की अग्नि शान्त हो! प्रतिहिंसा की कालानल शान्त

हो ! इस दरिद्र ब्राह्मण के रुधिर से ही यह अग्नि शान्ति हो ! माता दयामयी परमेश्वरी ! . . . ।ओ हो हो ! ब्राह्मण! यह क्या किया ? वस्त्र में से नंगी छुरी निकालकर सहज में ही अपने हृदय को फाड़ डाला ? इस समय चारों ओर से हाय ! हाय ! मचगई,सब के मुखों से ऐसी विलाप की ध्वनि होनेलगी कि ! हाय !! ब्रह्महत्या हुई ! बड़ा पातक हुआ ! ब्राह्मण की छाती में से रुधिर का फुहारा बहनेलगा, उस गरम रुधिर की धारा ने ऊपर को छूटकर उन दोनों भाइयों के शरीर को भिगोदिया, मानों होली के दिन किसी ने उन के शरीर पर गाढ़े रंग की पिचकारी मारदी । तब तो दोनों को चेत हुआ, उनके ही लिये ब्राह्मण ने आत्मघात किया है, उनके ही लिये स्वधर्मपरायण विद्यावान् उदारचित्त नित्य मंगल चाहनेवाले कुलपुरोहित ने आज आत्मघात किया है, उसके ही गरम रुधिर ने दोनों भाइयों का सब शरीर रंग दिया है। इस हृदयविदारक शोचनीय घटना को देखकर दोनों के हाथों में से तलवारें छूटपड़ीं, नेत्रोंमें जल आगया, हठ दूरहोगई, मनही मन में पश्चात्ताप करके अपने को धिक्कार देने लगे, कुछदेर दोनों भाई मौन रहे, टकटकी बांधे ब्राह्मण के मृत शरीर को देखते रहे, अपनी २ हठ को स्मरण करके दुःखित होने लगे, तदनन्तर महाराना की आज्ञासे बड़े समारोह के साथ उस परोपकारी आत्मबलिदान करनेवाले वीर ब्राह्मण की अन्त्येष्टिक्रिया आदि की गई। महाराना ने उस ब्राह्मणके सन्मानके लिये उसकी चिताके स्थानपर एक वेदीपर कीर्त्तिस्तंभ बनवादिया, और ब्राह्मण के परिवार को जीविका के लिये अटल प्रबन्ध करदिया ,आज पर्यन्त उस ब्राह्मण के वंशधर उसीप्रकार राजवृत्ति पाते चले आरहे हैं,तदनन्तर

प्रतापसिंह ने छोटे भाई से कहा कि तुम इसी समय मेरे राज्य से निकलजाओ। अब से मेरे राज्य में यदि तुम्हे कोई देख पावेगा तो यादरक्खो गिरफ्तार करलिये जाओगे और उचित राजदण्ड मिलेगा। आवेश दूर होगया, इससमय दोनों ही शान्त स्थिर और धीर हैं। एक के साथ दूसरे का राजा प्रजा का सम्बन्ध है, यह बात अब दोनों समझगये शक्तसिंहने कुछ न कहकर मस्तक नवायेहुए उत्तर दिया कि जो आज्ञा!। तत्काल शक्तसिंह अनुचरों सहित तहांसे चलेगये तदनन्तर प्रतापसिंह मनही मन में विचारनेलगे कि हाय! जीवनयज्ञ के प्रारम्भ में ही यह दुर्घटना हुई! न जाने इस की समाप्ति पर्यन्त क्या २ होगा। प्रारम्भ में चाहे जो कुछ हो अब तो संकल्प करचुका, चित्तौर का उद्धार करे बिना इस व्रतका उद्यापन नहीं होगा, चित्तौरका उद्धारही मेरे जीवन का मन्त्र है अब तो भगवान् के भरोसे पर इस मन्त्र का साधन करकेही जीवन को सफल करूंगा।

पांचवां परिच्छेद.

भरोसा भगवान् का है परन्तु उद्योग करना चाहिये, महात्माओंका कथन है कि उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी मिलती है, इसकारण मैं भी आज से कठोर साधन में चित्त लगाऊंगा चित्तौरका उद्धार ही मेरे जीवन का व्रत है। राज भोग विलास आनन्द विषयलालसा इन सबको निस्सन्देह दूर करूंगा। भूमिहीन राजा और अन्नहीन भूमि यह दोनों ही समान हैं लोग राजा कहते हैं परन्तु मैं किसका राजा हूं? मेरे पास राज्य नहीं है, राजधानी नहीं है, उपाय नहीं है, सहाय नहीं है, सामग्री नहीं है, कुछ भी नहीं है। इस मुकुट

को हथा ही धारण कररहाहूं विनासहारे,विना उद्योग,मनुष्य क्या करसकता है?चित्तौरका उद्धार मेरे जीवन का व्रत है ।

एकान्त कमरे में बैठकर परमचिन्ता में मग्न प्रतापसिंह संकल्प विकल्प कररहे थे. कभी आशा में कभी निराशामें कभी उत्साह में कभी निरुत्साह में उनका चित्त गोते खारहा था, इतने में सरदार चन्द्रावतकृष्ण उस कमरे में आपहुंचे, सरदारको देखकर प्रतापसिंहके हृदय का भाव और भी घना होगया, वह दृढताके साथ बोल उठे कि सरदार ! तुम आगये ? बहुत अच्छा हुआ,आज मैं तुमसे अपने मनकी बात कहूंगा, जिसको अधिक तो क्या मन्त्री ने भी नहीं सुना,आज पहिले तुमही सुनोगे और सुनने के साथ काम भी करोगे । देखो क्षुद्र उदयपुर में बन्द रहकर सोने के पिंजरे में रहना अब मुझ से सहा नहीं जाता ।स्वाधीनता की खुलीहुई वायु को भोगे विना अब मुझे शान्ति नहीं होसकती,प्रतीत होता है मुगलों ने दया करके इस उदयपुर पर दखल नहीं किया है। नहीं तो मेवाड का और छोडा ही क्या है ? सोने की चित्तौर, राजपूत जाति के गौरवके स्थल,पृथ्वीके नन्दन वन को पैरोंसे कुचलकर, राजस्थान के और राजाओं को चतुराई से वश में करके मुगलो ने, प्रतीत होता है हँसी समझकर उदयपुर के ऊपर अभी कृपादृष्टि नहीं की है । सरदार!देखो मैं सब सहसकता हूं ! केवल शत्रुका अनुग्रह मुझे विष की समान प्रतीत होता है, तुमने ही मुझे राजसिंहासन पर वैठाया है और आज तुम्हारे सामने ही उस राजसिंहासनके त्यागने का मैंने संकल्प किया है ।सरदार ने चौंककर कहा कि महाराज!बात क्या है, कृपा करके मुझसे कहिये,आप जानतेही होंगे सुखमें, दुःखमें, सम्पत्ति में, विपत्ति में, रणमें

बन में सदा यह दास आपकी आज्ञा पालन करने को उद्यत है। दया करके सब वृत्तांत मुझे 'स्पष्ट स्पष्ट' बताइये। लंबा सांस लेकर प्रतापसिंह ने कहा कि सरदार! तुम्हारी यह प्रतिज्ञाही मुझे उत्साह देती है वनवास के बिना अब मुझे शांति न होगी। वनवास का सुख ही अब हमारा वास्तविक सुख है। उस वनवास की बात ही आज तुम से कहता हूं। इतना कहते २ प्रतापसिंहके दोनों विशाल नेत्रों में आंसू भर आये यह दशा देख प्रभुभक्त सरदार का भी हृदय भर आया उ-उन्होंने एक गहरा सांस लेकर महाराना के मुख की ओर को देखा। प्रतापसिंह फिर कहने लगे कि सुनो सरदार! सच्चा महान् पुरुष ही वनवास के क्लेश को सहसकता है क्षुद्र पुरुष को वह असह्य प्रतीत होता है। परन्तु क्षुद्र हूँ चाहे महान हूं, सत्य कहता हूँ अब मुझे वनवासी होना पडैगा वनवास का व्रत ग्रहण करे विना और किसी प्रकार चित्तौर के उद्धार की आशा नहीं है। कठोर कष्टों को सहना, संयम, भूख प्यास को कुछ न गिनना और प्राणदान तक करने का प्रण करे विना क्या कोई बडे काम को करसकता है? चित्तौर का उद्धार करने को अवश्य ही हमें सबप्रकार के विलास से हाथ खैंचना होगा। सरदार ने कहा कि आप जो कुछ कहते हैं बहुत ठीक है। महाराना फिर कहनेलगे कि देखो इस भारतवर्ष में महात्मा पाण्डव एक दिन राज्य भ्रष्ट होकर वनवासी हुए थे, तब उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि यातो राज्य लेगें या वनवासी ही रहेंगे, क्योंकि वह जानते थे कि एक राज्य पाने में सुखहै और दूसरा वनवासमें सुख है। इन दोनों के मध्य का जो सुख अर्थात् मध्यम श्रेणी का जो जीवन है उस में वास्तविक सुख नहीं है, दारुण कष्ट में

भी, घोर वनवास के क्लेश में भी अपूर्व स्वर्गीय सुख है उस को सब नहीं समझते हैं। कठोर प्रतिज्ञा के कारण इससमय मैंने कुछ समझा है, यह सुन सरदार ने कहा कि महाराना की कृपा से यह दास भी उसको कुछ२समझताहै इतना सुन प्रतापसिंह आनन्द में भरकर कहने लगे कि जीवन के सहायक ! आनन्द आशा उत्साह और सिद्धि मार्ग में एकसाथ यात्रा करने वाले सरदार ! सब बातों में मैं तुम्हारा ऋणी हूँ इस जीवन में मैं तुमसे उऋण नहीं होसकूंगा, सरदारने कहा महाराज ! ऐसा न कहिये यह दास केवल अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। दोनों की ऐसी वातचीत हो रही थी कि इतनेहीमें एक गुप्तचर(भेदिया)आया और प्रणाम करके खडा होगया।उसकेमुखपरसुस्ती छाईहुईथी, महारानाने इशारेसे समाचार बूझा।दूत कहनेलगा कि प्रभो!आपने जो विचाराथा वही हुआ है, उदयपुर के ऊपर भी मुगलों की दृष्टि पड़ी है, शीघ्र ही नगर को विध्वंस करनेकी तैयारी होगी, महाराज! कहते हुए भी छाती फटीजाती है, कई एक स्वदेशद्रोही राजपूत कुलकलंक इसकार्य में मिले हुएहैं ! उन्हीं पापियोंके उत्साह और सम्मति से मुगल, यह अनर्थ करने को उद्यत हुए हैं। महाराना 'ठीक ही हुआ है' ऐसा कहते हुए सरदार के मुख की ओर देखकर कुछ हँसे और कहनेलगे।कि-ठीकही हुआ है। ऐसा न होता तो भगवान् का कोप ही क्या था ? जाओ अब तुम चले जाओ। इतना सुनते ही दूत प्रणाम करके चला गया। तब सरदार ने कहा महाराज!सब कुलक्षण ही दीखते हैं, प्रतापसिंह फिर उसीप्रकार कातरता में हँसकर कहनेलगे सरदार ! कुलक्षण क्या ? मैं तो सब सुलक्षण ही देखता हूं, जितनी अधिक विपत्ति आती है उतनी ही भगवान की अ-

धिक दया होती है , चतुराई और बहुदर्शिता में जो कुछ कमी है ऐसी विपत्तियों के आने से ही उसको पूरी कर-लेंगे,यह सुन सरदार ने उत्तर दिया कि श्रीमान् का विचार बहुत ठीकहै। आपही राजपूत जाति का मुख उज्वल रखेंगे इस समय जिस कार्य को करने की आज्ञा होगी यह दास उसको शिर झुकाकर स्वीकार करेगा महाराना ने कहा यही कहतां था , देखो पिताके बसाये उदयपुरको इस समय त्यागदेनाही अच्छा है , मन मन में कहने लगे कि-हाय ! प्राणों का मोह न करके यदि पिताजी चित्तौर को न छोडते ? प्रातःस्मरणीय जयमल्ल और पुत्त की समान यदि अपने देशके लिये प्राणदान करते तो आजहमें चित्तौर के उद्धार के लिये वनवासी न होना पडता। फिर प्रकाश रूप से कहनेलगे कि सरदार!पहिले जो विचार था इसने भी वही समाचार दिया, ऐसी ही और भी अनेकों बातें सुनने में आवेंगी। इसकारण पहिले से ही सावधान रहना अच्छा हैं, दो दिन बाद जो अवश्य होगा उस के लिये पहिले से ही उद्यत रहना ठीक है, उदयपुर के प्रकाश को छोड़कर अन्ध-कारमय एकान्त वन में रहना ही हमारे लिये हितकारी है। सरदार ने कहा श्रीमहाराज की आज्ञा हमारे शिर माथे पर है, प्रतापसिंह ने फिर कहा कि और जो कुछ कहना शेषरहा है सो फिर कहूँगा, शीघ्रही एक बडी भारी सभा करनी होगी फिर मनर में ही विचारनेलगे कि-क्या मेरे इस महान् स-ङ्कल्पको सबलोग मन में रक्खेंगे ? फिर आपही आपकहने लगे कि अवश्य रक्खेंगे।

छठा परिच्छेद ।

उदयपूर के राजमहल के सामने बडे भारी मैदान में आज एक महासभा होरही है। राज्य के जोटे बडे, प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित, धनी, दरिद्र सब राजपूत इकट्टे हुए हैं। राजपूत वीरों की ऐसी महासभा राजस्थानभरमें और कभी नहीं हुई। राना प्रतापसिंह के अधिकार में रहनेवाले सब राजपूतों को आज एक महामन्त्र ने बुलालिया है। जो बात छेडीगई है सब उसी के विचार में अपनी २ बुद्धि को दौडारहे हैं। महाराना प्रतापसिंह राजवेष में एक ऊँचे रत्नजटित सिंहासनपर विराजमान हैं। वह बडे ध्यान के साथ टकटकी लगाये आये हुए सकल राजपूतवीरों के मुख की ओर को देखरहे हैं। उन के दायें बायें राजपूतमन्त्री और बडे २ सरदार अपने२ आसनपर बैठे हैं। कइएक चारण भी इसमहासभा में उपस्थित हैं, प्रधानमंत्री भामाशाह महाराना के दाईं ओर गम्भीर भाव से बैठे हैं। महाराना ने सब को पुकारकर मेघ की समान गम्भीर वाणी में कहा कि–राजपूतवीरों ! अब तुम और कबतक हिम्मत हारेहुए उदासीनबने बैठेरहोगे ? और कबतक अपनेस्वरूप को भूलकर आलस्य में पडे हुए दिनों को गिनते रहोगे ? क्या मुगलों के करालग्राससे चित्तौर का उद्धार नहीं होगा ? स्वर्गसमान सोने की चित्तौर क्या सदा पराधीनता की जँजीरोंसे ही जकडी रहेगी ? हाय ! यह सुवर्ण की नगरी क्या आभूषणहीन विधवाकी समान ही रोती रहैगी ? तो फिर हमलोगों के जीवनका फल ही क्या है ? यदि राजपूत अपने देश का उद्धार करने में, स्वाधीनता की रक्षा करने में और जननीसमान जन्मभू-

मि की रक्षा करने में उदासीन रहेंगे तो क्षत्रिय मातापिता का सजीव रुधिर उन की रगों में काहे को बहता है ?

आओ–आज शुभदिन में, शुभक्षण में व्रतको ग्रहण करें, जब तक चित्तौर का उद्धार न होगा तबतक हम एक बड़े भारी अशौचव्रत को धारेरहेंगे। परमगुरु माता पिता का वियोग होनेपर हम जैसे शोक चिन्ह को धारण करते हैं, सब प्रकार के विलास भोगों को छोड़कर जैसे कठोर ब्रह्मचर्य व्रत धारते हैं–आओ, आज से अपने देश का कल्याण करने के लिये उसी महाकठोर व्रत को धारकर कृतार्थ और धन्य हों। सारे मेवाड के ऐसा शोकचिन्ह भाधारण करनेपर, एकता का ऐसा उदाहरण दिखानेपर, एक न एक दिन उसका शुभफल होगा, इसव्रत को मन्त्रसाधन समझो। अपने देश के लिये, अपनी जाति के कल्याण के लिये, स्वाधीनता की रक्षा के लिये इस महामन्त्र का अनुष्ठान करनेपर जगदीश्वर अवश्यही हमारे मनोरथ को पूरा करेंगे मेवाड़ हमारी मातृभूमि है, जननीसमान है, वही स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि, वह सोने के राजस्थान श्रेष्ठभाग स्वर्ग समान चित्तौर आज मुगलों के चरणों से कुचलीजारही है क्या चित्तौर समान जन्मभूमिरूप माता की सन्तान होकर हम कुलाङ्गारों की समान निरर्थक जीवन को धारण करेंगे ? उस समय उन असंख्यों राजपूतों के कम्पायमान कण्ठ से एकसाथ समुद्र की गर्जना की समान गम्भीरध्वनि होउठी कि नहीं नहीं,कभी नहीं। चित्तौरका उद्धार ही हमारे जीवन का व्रत है। हर्ष से प्रसन्नमुख होकर महाराना ने फिर कहा कि तेजस्वी क्षत्रियों के मुखसे ऐसी ही बात शोभा पाती है। अब उस अशौच व्रत को सुनो, जबतक हम चित्तौरका

उद्धार न करसकेंगे तबतक किसीप्रकारका आनन्दउत्सवनहीं मनावेंगे, जननी जन्मभूमि के शोक में ठीक माता पिताके वि-योग से होनेवाले दुःखके चिन्हों को धारण करेंगे। शिरके केश, डाढी मूछें और नखों का क्षौर सर्वथा त्यागना होगा, वृक्षों के पत्तोंपर भोजन और तृणों की शय्यापर शयन करना होगा पान भोजन के लिये सोने चांदी के पात्र दूर फेंकने होंगे, सुखकी सामग्री को विषकी समान त्याग होगा, पहिनावे में साधारण मलिन वस्त्रों में ही सब को सन्तुष्ट रहना होगा किसी भी उत्सव, व्यसन,आनन्द या रसरङ्गमें कोई भी सम्मिलित नहीं होसकेगा, आज से विजय का बाजा वा नगाड़ा गर्व के साथ सेना के आगे न बजकर, दुःखभरे स्वर में सेना के पीछे बजेगा, बस आज से किसीप्रकार का भी आनन्द नहीं मना-या जायगा। भीतर और बाहर सदाही अति दीनभाव से सब को समय बितानाहोगा। इसप्रकार दीनहीन कंगालकी समान चित्त लगाकर भीतरही भीतर प्रार्थना करनेपर वह दयामय दीनबन्धु भगवान् कदापि हमारे ऊपर अप्रसन्न न रहसकेंगे अ-वश्यही उनका आसन डिगजायगा, अवश्यही वह अपने भक्तों के ऊपर दयालु होंगे। इसप्रकार कठोर ब्रह्मचर्य व्रतमें तत्पर राजपूतों का जीवन-एकदिन अवश्यही सिंहका बलपावेगा फिर चित्तौर का उद्धार करना तो कौन बात है? । सारा आर्यवर्त्त राजपूतों के हाथ में आसकेगा। फिर वह विराट् सभा एकस्वर में कहउठी कि-मेवाड़ के मंगल के लिये हम अवश्यही इसमहा व्रत को ग्रहण करेंगे। प्रतापसिंह ने संतुष्ट होकर दूने उत्साह के साथ फिर कहा कि तो यह मेवाड़ के आनन्दका प्रकाश दूरकर दियाजाय! मेवाड़ को अन्धकार से ढकादियाजाय। आज से मेवाड़ का हास्यमय मुख कोई

न देखने पावे, सकल राज्य मरुमय भूमि की समान होजाय, इसकी श्री–शोभा–सुन्दरता सबही दूर होनी चाहिये। सुखी का आनन्दमय अट्टहास्य, दुःखी का रोना, सङ्गीत का मो- हितकरनेवाला स्वर, बालकों का हास्य, पतिपत्नी का प्रेम भाषण,माता पिता का स्नेह और आदर,बस इस राज्य में जी- वित न रहे। संध्या के दीपकोंका प्रकाश,मंगलगान,देव पूजन याग, यज्ञ और व्रतआदि कुछभी इस उदयपुर और इसके समीप के स्थान में बसकर न होना चाहियें। समझलो कि- विधाता के अटलशाप से हम सबही प्राणहीन और स्थानभ्रष्ट होगये हैं। किसान किसीप्रकार की खेती का काम न करें, अन्नशोभिताभूमि–स्वर्ण उत्पन्न करनेवाली मेवाड़भूमि बस अब सर्वस्वहीन होकर मौनधारे रोतीरहे। देखें तब पापात्मा मुगल इस निर्जन वनको लेकर क्या करेंगे ?। इतना कहतेर महाराना के उन तेज से दिपनेवाले दोनो नेत्रों में से आँसुओं की धारा बहने लगी। सभा में और सब राजपूत मंडली भी आँसुओं के जलसे सराबोर होकर नीचेको मुखकरेहुए लम्बे श्वास छोड़ने लगी। महाराना ने फिर कहा कि--भ्राताओं ! तथापि निराश न होना, किसी समय फिर सब तुम्हारा ही होगा। इससमय कुछदिनों के लिये इस माया ममताको त्याग- गना पड़ता है। जब हृदय को पकड़कर, उस सोने की चित्तौर को त्यागकर आजभी हम जीवित हैं तो क्या इस तुच्छ राज्य और राजधानी को त्यागकर हम जीवित न रहसकेंगे ?। बाप दादेकी निवासभूमि को छोड़ने में प्रथमतो अवश्य ही कुछकष्ट होगा, परन्तु इस नवीन व्रत को ग्रहण करने पर दो दिन के बाद फिर वह कष्ट नहीं रहैगा। आरावली की ऊंचीं भूमिपर कमलमीर नामक दुर्गम पहाडीमें हमारी नई राज धानी बनेगी

उस दुर्गम स्थानपर पापी मुगल सहजेंमे हमारा कुछ नहीं कर सकेंगे। और यदि हमारी आजकल की सी ही दशा रही,तिस पर भी मेवाड की इससमतल भूमि मेंही वासकरते रहेतो पग२ पर विपत्ति में पडना होगा। मुगलों की लोभमयी दृष्टि निरन्तर राजस्थान पर लगी हुई है, तिसपर भी—कहते में छाती फटती है हा! वहुत से राजपूत कुलकलङ्क, स्वदेशद्रोही कुलङ्गार, मुगलों की शरण में जाकर अपनी जाति और देश का नाश करने के लिये तलवार उठाये हुए हैं। इन शब्दों के साथ ही प्रतापसिंह के नेत्रों में से आँसू टपकने लगे, अपनी जाति की दुर्दशा को स्मरण करके सभामें वैठेहुए और राजपूतों के नेत्रों में से भी आँसू वहने लगे। महाराना सावधान होकर गद्गद कण्ठ से फिर कहने लगे कि–तो क्या भ्राताओं! इससमय हम को कठोर व्रत धारण करना उचित नहीं है?। मारवाड, आमेर, वीकानेर आदि सवही आज जातीय अभिमान और गौरव को भूलकर मुगलों के गुलाम वनरहे हैं।वंश-परम्परागत क्षत्रिय–रुधिर को पानी करके, अपने स्वरूपको भूलकर जाति, धर्म,कुलीनता, आचार, व्यवहार सवहीवातों को तिलांजलि देदी है। अधिक क्या कहें यवनों के साथ सम्वन्धतक करने में नहीं हिचकते हैं, क्या तुमभी ऐसा पशुओं की समान जीवन चाहते हो? सभा में चारों ओर से उत्तर आया कि–नहीं,कदापि नहीं,ऐसे निंदित जीवन से मरण हो जाना हजार जगह अच्छा है। अवकी वार महाराना और भी उत्साह के साथ कहने लगे कि–तो क्या कुमौत प्राण देने की अपेक्षा अपने देश के लिये महान् व्रत को धारण करनेकी इच्छा नहीं है?। सवने उत्तर दिया–अवश्य, अवश्य!! आज से ही हमने इसव्रत को ग्रहण किया। सभा में वैठेहुए वह

असंख्यों राजपूत गंभीर गर्जना के साथ कह उठे कि-जबतक अपने देशकी स्वाधीनता की रक्षा और चित्तौर का उद्धार न करसकेंगे तबतक इसव्रतको समाप्त नहीं करेंगे, यहबात हम महाराना और अन्य सबके समक्ष शपथ खाकर कहते हैं। इसबार महाराना ने हर्ष से उत्फुल्ल होकर और भी ऊँचे स्वर से कहा कि-एकबार सब मिलकर कहो।

कार्यं वा साधयेयं शरीरम्वा पातयेयम्।

उस समय सब राजपूतों ने मन्त्र से मोहित हुए से होकर आकाशभेदी स्वर से महाराज की आज्ञा का पालन किया। तदनन्तर महाराना ने चारण को कुछ इशारा किया, उस ने अपने गुण से सारी सभा को स्तम्भित करके अपने देश की भाषा में कुछ कविता पढ़ी, जिसका तात्पर्य यह है कि-शुभ-क्षण, शुभमहूर्त्त, माहेन्द्रयोग है, ऐसा शुभदिन राजपूतों को फिर मिलना कठिन है, आज कठोर ब्रह्मचर्य के साथ व्रत ग्रहण करो, अपने देश की रक्षा के लिये जीवन दान दो, ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। सामने आभूषणहीन विधवा स्त्री की समान यह चित्तौर नगरी आँसू बहारही है, यह देखो मेवाड की राजलक्ष्मी को, विधर्मी मुगल सैंकड़ों प्रकार से अपमानित और नष्ट भ्रष्ट कररहे हैं, यह देखो कितने ही देश द्रोही राजपूत कुलाङ्गार भी उनमे जाकर मिलगये हैं। क्षत्रिय वीरों! क्या तुमभी इस घोर दुर्दशा को देखते हुए मौन ही रहना चाहते हो? । नहीं-नहीं, व्रत ग्रहण करो, मंत्रकी साधना करो, अपने देशकी रक्षा करके मनुष्य कहलाओ, आज-कैसा शुभमुहूर्त फिर नहीं मिलेगा, इतना कहकर चारण चुप होगया परन्तु राजपूतों के हृदय में वह कविता गुंजारती ही रही, मानो सबको नशा चढगया, खाते, पीते, उठते, बैठते

और सोते में मानो कोई उनके कान में बराबर इसी मंत्रको कहरहा है कि--ऐसा शुभ मुहूर्त्त फिर नहीं मिलेगा।

सातवाँ परिच्छेद।

इस एकही दिनमें मेवाड़ की दशा बिलकुल बदलगई, सब राजपूतोंने आजसे नया जीवन पाया, उस दिन से सबने प्रतिज्ञा के अनुसार निवासभूमि की माया ममताको छोड़दिया। महाराना के अधिकार के सब राजपूत, एक २, दो २, दश२, सौ २, हजार २, करके, उदयपूर और उसके आसपास के स्थानों को छोड़कर महाराना की आज्ञानुसार आरावली पर्वत पर कमलमीर आदि दुर्गम पहाडी स्थानों में जा अपने रहने के लिये कुटियें बनानेलगे। इसप्रकार नियमित करेहुए थोडेही समय में सब राजपूत उस हरीभरी समतल मेवाडभूमि को छोडकर पहाडों के बियाबान जंगल में जाबसे। कमलमीर महाराना की प्रधान राजधानी हुई, साथ २ कितने ही पहाडोंपर किलेभी बनायेगये, तहाँ शोभा कुछ नहीं थी, किन्तु सूनसान, दीनता और कष्टसहिष्णुता मूर्त्तिमान् थी। सारी राजधानी में कहीं कोई महल क्या कोठा भी नहीं बनायागया, घास फूस की मँडइयें ही राजपूतों के प्रिय स्थान हुए। औरोंका तो कहाना ही क्या, स्वयं महाराना भी झोंपडो में रहकर ही स्वर्गसमान सुख पानेलगे। और उधर वह नाना प्रकार की कारीगरी से बनेहुए, नयनों को आनन्द देनेवाले असंख्यों महल, जहां निरन्तर आनन्द के साथ नाच, गान, उत्सव और हास्य के साथ मनुष्यों का कोलाहल रहता था, वह मेवाड के महल मनुष्यहीन होकर, बियावान में खडे होकर संसार को अपनी जड़ता दिखानेलगे। फिर उन स्थानों

के भीतर प्रातःकाल के सूर्य की किरणें और दीपक के प्रकाशने उजाला नहीं किया। वीरों की वीरता, गृहस्थों की सम्पति, विषयी पुरुषों की विषय चिन्ता और भगवद्भक्तों की भक्तिमत्तता फिर वहां किसी ने नहीं देखी, सारा मेवाड़ मानो शून्यता में डूबगया। महाराना की कठोर आज्ञा थी कि-वह यदि किसी भी मनुष्य को, उदयपुर और उसके आसपास के स्थानों में देखपावेंगे तो उसको प्राणान्त दण्ड दियाजायगा। एक तो महाराना की आज्ञा दूसरे सब राजपूत उसदृढ प्रतिज्ञा में बँधेहुए थे, फिर नियम को कौन तोड़सकता है? दुर्भाग्यवश एक गण्डरिये (बकरी पालनेवाले) ने इस नियम को लांघकर प्राणान्त दण्ड पाया था, महाराना ने उसकी लाशको वृक्षमें टांगदेने की आज्ञा देकर, नियम का उल्लंघन करनेवालों के लिये प्रत्यक्ष फल दिखादिया था। कभी २ वह अपने आप घोडेपर सवार होकर घूमतेहुए देखते थे कि-उनकी आज्ञा का ठीक २ पालन होता है या नहीं?। इसकारण सारादेश एक साथ महाश्मशान सा बनगया। उदयपुर और उसके आसपास के सब स्थान जनशून्य होगये, वह वीरों की हुंकार और नगरवासियों की आनन्दध्वनि कहीं भी न रही, खेतों की जगह जंगल होगया, चारों ओर शेर भेड़िये आदि हिंसकजीव आनन्द के साथ विचरनेलगे, तथापि महाराना किसी २ दिन वहां फेरा करजाते थे और निर्जन स्थान में चुपचाप आंसू बहाकर अपने व्रतका उद्यापन करने के लिये और भी दृढप्रतिज्ञ होते थे। एक दिन उस बियावान् में खडेहुए आपही आप कहनेलगे कि-हाय! मेरे लिये ही आज राज्य की यह दशा हुई, पिताकी राजधानी को मैंने श्मशान की समान बनादिया। परन्तु जो ऊँची

इच्छा हृदय में जागरही है, हे अन्तर्यामी देवता! उसको तुम सब जानते हो, मैंने इस राज्य को वृथा ही श्मशान की समान नहीं बनाया है, इस श्मशान मे इकट्ठीहुई राख के ढेर में जो अग्नि की चिनगारी दबीहुई है वह एक दिन मुगलों के सकल राज्यको भस्म करके छार करडालेगी। आशा पूरी हो या न हो परन्तु कायर पुरुषों की समान भोग में मत्त-होकर निष्फल शरीर का भार नहीं उठाऊँगा, प्राण देकर भी मंत्रसाधन की समान चित्तौर का उद्धार करूंगा, न जाने मेरे हृदय समुद्र को मथकर कौन कहता है कि—यत्नकर, रत्न मिलेगा, जो खोयागया है वह फिर मिलजायगा। मैया ज-न्मभूमि! दुर्बल सन्तान के हृदयमें बल दे! हा पितः उदय सिंहजी! यदि तुम रानाकुल में जन्म लेकर भी चित्तौर को छोड़कर नहीं भागजाते तो आज तुम्हारे पुत्रको मनके दुःख से युवावस्था में ही संन्यासी की समान बनकर बनवासी न होनापड़ता। आज पिता के पापका प्रायश्चित्त पुत्र करता है। (पृथिवी का इतिहास अनन्तकाल तक प्रतापसिंह को वीरेन्द्र समाज में मुकुटमणि समझेगा)।

आठवाँ परिच्छेद.

पाठक निःसन्देह इतनी शीघ्र शक्तसिंह को न भूलेहोंगे, उस अपमानित और मर्मस्थान में जखमीहुए राजभ्राता का क्या परिणाम हुआ?यहभी एकबार देखना चाहिये। राजपुरोहित की शोचनीय मृत्यु से महाराना के मनको जितना दुःखहुआ राजभ्राता शक्तसिंहके मन को भी उससे कम कष्ट नहीं हुआ, अधिक क्या, महाराना ने अपने भाई को राज्य से निकलवा ही दिया, इस अपमान ने सैंकड़ों सहस्रों विच्छुओं के काटने

की समान शक्तसिंहको अधीर करडाला। शक्तसिंहने इस का पलटा लेने का निश्चय किया, इस भाई भाई के आपस के कलह ने अन्तमें बड़ा भयानक रूप धारण किया, विकल-चित्त शक्तसिंह घोड़ेपर चढ़कर चलदिये, कईदिनतक चलते२ कितने ही नगर, पर्वत और वनों के पार निकलगये, कई दि-नतक भोजन और निद्रा न होने के कारण उनका क्रोध और भी बढ़गया, अन्तमें उस अपमानित अभिमानी वीर शक्तसिंह ने दृढ़प्रतिज्ञा करके जिस मार्गका अवलम्बन किया, उसको स्मरण करने से भी कष्ट होता है। सारे दिन मार्ग चलकर दुश्चिन्ता, अनाहार और धूपकी तेजीसे व्याकुल हो-कर दुपहरी के समय शक्तसिंह एक वियाबान पर्वतकी त-लैटी में खड़े होगये, समीप में ही शान्तिदायक झरने का जल, कल कल, छल, छल शब्दके साथ बहरहा था, ऐसे स्थानपर थकेहुए मनुष्य की थकावट आपही दूर होजाती है, निद्रा के आलस्य से शरीर मन आदि सबही अकड़ने लगता है परन्तु अभागे शक्तसिंह की प्रारब्ध में आज यह भी बात नहीं थी, उन्होंने सावधान होने के लिये अनेकों चेष्टा करीं, घोड़े को समीप में एक सालके पेड़ से बाँधकर झरने के जल से हाथ मुख आदि को धोया, फिर विश्राम लेने को एक शिलापर बैठे, चारों ओर भयानक वियावान जंगल था, ऊँचे२ पहाड़, वृक्ष और आकाश के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता था, शक्तसिंह चिन्ताकुल होने के कारण वहां भी आराम से नहीं रहसके, यद्यपि बाहर शरीर म कुछ शीतलता हुई परन्तु हृदय की आग व. तीही जाती थी। हाय! अनर्थकारी अभि-मान !!। शक्तसिंह आपही आप कहनेलगे कि ओः ऐसा अपमान ! भाईका भाई के साथ ऐसा व्यवहार ? राजा वन-

कर इतना अहङ्कार ! यह तेज नहीं दम्भ है ! सच्चे तेजस्वी पुरुष क्या कभी वृथा अभिमान को रखने के लिये सत्यको छुपाते हैं ? पाठक समझगये होंगे कि–शक्तसिंहके मन में इस समयतक विश्वास है कि मेरे ही वाण से शूकर का शिकार हुआ था। उत्तेजित शक्तसिंह मनर में यह भी कहने लगे कि धिकार है ऐसे राजमुकुटको कि सत्यकी रक्षा के लिये जिनके चित्त में स्थान न हुआ दूसरेके कर्त्तव्यको छुपाकर जो आप बड़ा बनना चाहता है, वह सारी पृथ्वी का चक्रवर्त्ती राजा होनेपर भी क्या कृपा का पात्र है ? तो क्या मैं भाई के करेहुए अपमान को भूलजाऊँगा ? उदयपुर के महाराना मेरे पिताके बड़े पुत्र, उन्हो ने कुछ शोच विचार नहीं किया ! पवित्रात्मा पुरोहित की मृत्यु के बाद उन्हो ने जो कुछ किया क्या यह उचित हुआ ? ऐसा विचारतेर शक्तसिंह के नेत्रों में कोपाग्नि की चिनगारियें निकलनेलगीं, हाथों की मुट्ठियें बँधगई, चरणों से मस्तकपर्यन्त सब शरीर जल उठा, दांतों से दांतों को घिसकर शक्तसिंह लम्बी साँस छोड़तेहुए कह-उठे कि 'उन्होने जो सब के सामने तुच्छ कापुरुष समझकर मुझ को कुत्ते बिल्ली की समान ललकार कर निकालदिया है, 'तू अभी इसी समय मेरे राज्य से निकलजा' यह विषभरी बातें जहरके बुझे वाण की समान प्रतिदिन मेरे हृदयको बेधरही हैं, चाहे जैसे हो इस कांटे को निकालूंगा। 'यदि अब से मेरे राज्य में तुमको कोई देखपावेगा, तो जानलेना तुम गिरफ्तार करलिये जाओगे और उचित दण्डभी भोगना पडेगा' यह वज्र की समान कठोर शब्द मेरे कानों में अभीतक सुनाई देरहे हैं, क्या ऐसे अपमान और ऐसी कठोरताको मैं भूलजाऊँगा ? क्षत्रिय के

रुधिर को शरीर में धारण करके इस मृत्युसमान अपमान को भूलजाऊँगा ? ऐसे अपमान को भी भूलकर, अपमानित निन्दित जीवन को रखने से ही पृथिवी का कौन काम सिद्ध होगा ? अतः इस अपमान को मैं कदापि नहीं भूलूँगा, किन्तु अवश्य ही बदला लूँगा। अन्त में शक्तसिंह दृढता के साथ मन ही मन में कहनेलगे कि-अब यह हृदय की ज्वाला बडे भाई प्रतापसिंह के रुधिर को छोडकर और किसी वस्तु से शांत नहीं होगी, हाय! चाण्डाल अभिमान!!। शक्तसिंह के चित्त में पापचिन्ता की तरंगें उठनेलगीं कि-मनकी वासना को किसप्रकार पूर्ण करूं ? वह राज्यके स्वामी हैं, सहस्रों राजपूत वीरों के प्रभु हैं और मैं इससमय दीन, हीन, मार्ग का कंगाल हूँ, हाय ! किसप्रकार इच्छाको पूरी करूँगा ? फिर आपही आप विचारा कि-ऐसा होने पर भी क्यों उत्साह तोडूँ, मनुष्य पूरा २ यत्न करनेसे क्या नहीं करसकता है ?। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, यह लोक, परलोक, इन सब बातोंका विचार तो मैं इससमय करूँगा नहीं, चाहे जो कुछ हो बदला लूंगा परन्तु अब मुझको उपाय क्या करना चाहिये ?। पापके वश में होकर मनुष्य सबकुछ करसकता है, अबकीवार दुर्विचारसे शक्तसिंहने निश्चय किया कि-अकबर की शरण में जाऊँ, बादशाह की सहायतालेने से ही मेरा मनोरथ सिद्ध होगा। परन्तु एकवार मन में यह विचार भी हुआ कि-परन्तु विधर्मी यवनों का आश्रय लेना पडेगा, भाई के ऊपर क्रोध ढालने में स्वजाति और स्वदेश का शत्रु होना पडेगा, तो क्या घरभेदी विभीषण बन कर कुलांगार नाम धराऊँगा ?। इस समय अवसर पाकर शक्तसिंह के ऊपर ऐसा पाप सवार हुआ कि-उससे पीछा

न छुटासका, और तवही एक ऐसी घटना हुई कि-राजपूत वीर शक्तसिंहने स्वदेशद्रोही कुलाङ्गार बनने का भी निश्चय करलिया। जिस शिलापर बैठकर क्रोध में भरे शक्तसिंह अपने मनमें आकाश पाताल के कुलावे मिलारहे थे, उसके समीप में ही एक काले सॉपने अपने विष की ज्वाला से बेचैनकर किसी प्राणी के न मिलनेपर एक पत्थर के टुकडे में ही अपना दाँत जमाया, पहिलेही डंसने में कुछ विष उगला, दुसराकर फिर डसा और क्रोधके मारे उस पत्थर के टुकडे को चारों ओर से लपेटकर फुंकारते २ एक तीसरा बार और किया। इसप्रकार बार २ डसने से जब हृदय में का बहुतसा विष बाहर निकलगया और उस पत्थर को कुछ हानि नहीं पहुंची, उलटे उस सर्प के ही दो एक दांत टूटगये तथा मुखमें से रुधिर निकलनेलगा तव वह महादुष्ट निर्वीर्य और निस्तेज होकर सूंसूं करताहुआ एक झाडीमेंको चलागया यह देखकर शक्तसिंह ने मन ही मन में विचार किया कि-जब कि-यह सर्प भी हिंसावश कठोर पत्थरको डसने से भी परांमुख नहीं होता है। तो क्या मैं मनुष्य होकर बदला न लेसकूंगा ? । धर्म अधर्म पाप पुण्य सब अथाह जलमें डूब जायँ ! भ्रातृप्रेम और मनुष्यत्व रसातल में चलेजायँ ! परन्तु मैं बदला अवश्य लूंगा 'विधर्मी की सेवा करना स्वीकार है कुल की मर्यादा को तिलांजलि देदूँगा, मेवाड का शत्रु बनूंगा तथापि बदलालूँगा। प्रतापसिंह ! तुम्हारे अभिमान को देखूंगा ! चाहे जो कुछ हो अब पहिले अकबर बादशाह से जाकर मिलता हूँ, फिर तुमको सिंहासनभ्रष्ट, मार्गका भिखारी बनादूंगा, तभी मेरा नाम शक्तसिंह है मूर्त्तिमान् नरकसमान शक्तसिंह तहाँ से चलदिया और अपनी जाति तथा अपने

देशका नाश करनेके लिये पापात्मा शक्त कईदिन के अनन्तर दिल्लीजाकर पहुँचगया और बादशाहका कृपापात्र होकर अपने मनोरथ को साधने का अवसर खोजनेलगा । हाय! नारकीय अभिमान्!! । परन्तु वह अभिमान कहाँ है ?जिस अभिमान से ध्रुवजी ने ध्रुवलोक पाया था, पाण्डवों ने वनवास और अज्ञात वासका कष्ट सहकर भी धर्मयुद्ध में कौरवों के कुलको निर्मूल किया था, विश्वामित्र जी ने अलौकिक तपस्या करके त्रिलोकी को कम्पायमान करदिया था, कहाँ है वह अभिमान ? कहाँ है वह विश्वविजयी अग्नि ? यदि अभिमान करना होतो ऐसा ही अभिमान करो जिससे वास्तव में बडे बनसको, नहीं तो शक्तसिंहकी समान नीचता, कायरपना और अधर्म को बढानेवाले अभिमान के द्वारा अपने स्वरूप को मतभूलो । यह ठीक अभिमान नहीं है किन्तु इसका नाम आत्मप्रवञ्चना (अपने को ही धोखादेना है । चाहे तुम में और सैकडों दोष रहैं परन्तु आत्म प्रवञ्चना कभी न करो ।

नवम परिच्छेद ।

पहाडपर कमलमीर में, उदयसागर नामक बडेभारी सुन्दर सरोवर के तटपर, शिशोदिया कुलके उज्ज्वलरत्न महाराना ने नया । उस दुर्गम पहाडी स्थान में, भयानक शेर भेडिये आदि से भरेहुए स्थान में राजपरिवार का निवास स्थान बना, उदयपुर के उन परम सुन्दर महलों को छोडकर घास फूस की झोपडियों में महाराना परिवार सहित रहनेलगे । महाराना की पटरानी भी परमयोग्य थी, विपत्ति में स्थिर, दुःख में अविचलित, स्वामी के जीवन व्रत की सहायक

थीं, वह प्रसन्नता के साथ वनवास के दुःखको सहनेलगीं, अपने पुत्र कन्यादि परिवार को साथ लेकर प्रसन्नमुख रह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करनेलगीं, राजा की प्रिया, राजलक्ष्मी सती ने स्वामी के साथ समानभावसे नये व्रत को धारण किया। महाराना ने, रानी के इस कठोर आत्मत्याग को देखकर समझा कि–अब व्रत ग्रहण करना निष्फल नहीं होगा, पहिले ही पहिले तो महारानाकी बालक सन्तानों को बहुत ही कष्ट सहना पडा, वह सुकुमार अभ्यास न होने के कारण पहिले तो सभी विषय में, दुःखितहुए। पहाडी वन के नये स्थान में आना, वन के फल मूल खाना, काँटों में फिरना और फंसके झोंपडे में रहना, सब विषयमें ही उन को, बडा कष्ट भोगना पडा, महाराना ने, परमप्रिय बालकोंकी दशा देखी और लम्बी सांस छोडकर चुपरहगये, हृदयका दुःख किससे कहै ? एकदिन पति और स्त्री की परस्पर इसप्रकार बात चीत हुई–महाराना ने कहा प्रिये ! मैंने बडा कठोर व्रत धारा है, मेरे भाग्य के ऊपर ही सारेमेवाड का शुभाशुभ निर्भर है, न जाने भगवान् को क्या करना है ? स्त्री ने उत्तर दिया कि कि भगवान् के मन में अच्छाही है, शुभसङ्कल्पका फल कभी वृथा नहीं जाता है, स्वामिन् ! आपके इस आत्मत्याग का फय अवश्यही शुभहोगा। महाराना ने कहा ! रातदिन यही प्रार्थना करता हूँ, देख ऊँची आशापर हृदयको बाँधकर मैंने मेवाड के आनन्दरूपी दीपक को बुझादियाहै सकलमेवाड को श्मशान की समान करदिया है, मेरेही कहनेने से मेवाड के बालक बूढे–और स्त्रियें तक निर्विकार चित्त से मेरे साथ बनवासी हुए हैं। आशा है चित्तौर का उद्धार करके समय पाकर एकदिन सबराजपूत वीर स्वाधीन

जाति के नाम से जगत् में प्रसिद्ध होंगे। परन्तु हाय! कौन जानता है मेरी इस अति ऊँची आशा के ऊपर विधाता निष्ठुर हँसी करते हैं या नहीं?। रानी महाराना के चरण चापते चापते कोमलस्वर में कहने लगी कि नाथ! अमङ्गल की आशा से उत्साह को न तोडो, भवानी मैया अवश्य ही तुम्हारे मनोरथ को पूरा करेंगी। महाराना कहने लगे कि–बडाभारी दुःखतो यह है कि–हमारी जातिवालों ने ही हमारी जातिका सर्वनाश किया है! हाय! इस विषाग्नि की औषध कहाँ है? अधिक क्या कहूँ, समाचार मिला है कि–अभागा शक्तसिंह मुझ से बदला लेनेके लिये उसदेश के चिरकाल के शत्रु मुगल अकबर से जाकर मिला है तथा सागर जी आदि हमारे और जाति भाई तो तहाँ हैं ही, अब चारों ओर घोर अन्धकार दीखता है। रानी पद्मावती ने कहा कि–नाथ! आपके नवीन व्रतरूप पुण्य प्रकाश से यह अन्धकार नष्ट होजायगा, फिर सौभाग्य के प्रकाश में सारी मेवाड आनन्द मनावेगी। इतने हीमें महाराना के दो बालक पुत्र कन्या, खेलते खेलते तहाँ आगये, पुत्रकी उमर पाँच वर्ष की और कन्याकी अवस्था तीन वर्ष की थी, उन्होंने आकर तोतले शब्दों में, माता पिता के ऊपर एक मीमांसा का मारडला, पुत्र ने आकर माता का ओढना पकड़कर नेत्रों में आँसू लाकर कहा–क्या मैय्या! बहुतदिनों तक ऐसे ही पत्तों के घर में रहकर चटाई पर सोना पडेगा?, लड़की ने भी महाराना की गोदी में बैठकर यही बातकही, यह सुन महाराना के नेत्रों में जल भर आया, तब तो लड़की कहने लगी कि–बाबा! तुम्हारे नेत्रों में जल क्यों भर आया? उस दिन भी तुम्हारे नेत्रों में जल आगया था, तो बाबा! मैं अब तुमसे यह बात नहीं कहूँगी, मालूम होता है

मेरे ऐसा बूझने से तुमको कष्ट होता है ? । पति की गोद में से स्नेहमयी कन्या को लेकर पद्मावती ने, कन्या के चित्त बटाने के लिये कहा कि-देखतो बेटी ! मेरी आँख में क्या पडगया ? मधुरभाषिणी कन्या ने कहा-कहाँ, मैया ! इस में तो कुछ नहीं पडा है, ले मैं तेरी आँख में फूँक मारे देती हूँ, लड़की ने फूँक मारी, माता बहुत देरतक कन्या के मुख की ओर को देखती रही, देखा कि-मेरे ही मुख की छवि को चुराकर कन्या नेत्रों में फूँकमार रही है । फिर लड़की खेलती २ दूसरी झोंपडी में को चलीगई । परन्तु महाराना का पाँचवर्ष का कुमार तब भी तहाँ ही बैठारहा, माता पिता के नेत्रों में जल देखकर न जाने क्यों उसके नेत्रों मे भी जल भर आया, प्रतापसिंह ने यह दृश्य देखा और प्रेम के साथ समझाते हुए कहने लगे कि-किरण! बडे होजाओगे तो सब जानसकोगे, जाओ देखो बेटा! तुम्हारे बडे भाई के समीप मल्लयुद्ध होरहा है । महारानी ने पुत्र के मुख को चूमकर कहा कि-हाँ बेटा ! जाओ, भैया के पास तमासा देखो । महाराना ने कहा प्रिये ! बडाभारी पत्थर भी जिस दृश्य को देखकर आँसू नहीं रोकसता, हाय ! मैंने क्या किया । रानी ने उत्तर दिया कि-नाथ । आपने जो कुछ किया है अच्छा ही किया है, सुन्दर महल छोडकर पर्ण कुटी में रहना, उत्तम २ भोजन पदार्थों को त्यागकर वन के फलमूलों से भूँख को बुझाना, दूध के झागों की समान शय्याको छोडकर तिनकोंपर सोना, मैले वस्त्र पहरना, केश, डाढी, मूछ और नखों को क्षौर का स्पर्श भी न करना, मातासमान जन्म भूमि के उद्धार के लिये ऐसे महान व्रत को धारण करना, शिशोदिया कुलके अनुसार ही हुआ है । प्राणेश्वर ! तुमने ही तो एकदिन कहा था कि-जो देश के लिये अपने क्षुद्र स्वार्थ को

नहीं त्यागसकता उस मनुष्य का जीवन ही वृथा है, फिर आज अपने ही स्वरूपको कैसे भूलेजातेहैं?पुत्र,कन्या और मैं सब आपके ही तो हैं,मुगलों के ग्रास से जन्मभूमि के उद्धारके साधनरूप बडे भारी कार्य का भार विधाता ने तुम्हारे ऊपर रक्खा है, इस महायज्ञ में यदि हम सबों के प्राणों की आहुति देनी पड़े तब भी आपका व्रत भङ्ग नहीं होगा, यह मुझको विश्वास है, जाओ नाथ ! सकल सामन्त और सरदारों को उत्साहित करो आज हो या कल, युद्ध अवश्य होगा। क्योंकि घरका भेदी विभीषण दुष्ट शक्तसिंह मुगलों के साथ जाकर मिलगया है, अतः युद्ध अवश्य होगा, इसकारण जाओ, अब असावधान रहना ठीक नहीं है। ऐसी शोभामयी साक्षात् भगवती की मूर्त्तियें क्या सर्वत्र मिलसकती हैं ? एक दिन इस भारतवर्ष में ऐसी ही सोने की प्रतिमा शोभायमान थीं, एकदिन ऐसी ही मधुर उद्दीपना में हिन्दूनारियें पति को महान् कार्य के साधन में उत्साहित करती थीं। महाराना मनही मन में कृतार्थ होकर हर्ष से प्रसन्न होकर कहनेलगे कि प्राणप्यारी आज मैं धन्य हूँ, मैंने समझलिया, मेरी बडी भारी कल्पना को प्रफुल्लित करने के लिये प्रतिमारूप से मूर्त्तिमती होकर तू मेरे पास खडी है, ईश्वर तुझ को चिरायु करें। फिर मनही मन में कहनेलगे कि-हा ! हतभाग्य शक्तसिंह ! ! ।

दशवाँ परिच्छेद ।

सर्वग्रासी अकबर एक२ करके भारतवर्ष के सब देशों को ग्रसरहा है। एक२ करके सब राजों को मानो जादू के मन्त्र से वश में कररहा है। आमेर बीकानेर और मारवाडने,

अभी कुछदिनों पहिले ही अपनी स्वाधीनता को तिलांजलि देकर अकबर के चरणों में अपने जीवन का सर्वस्व समर्पण किया। इससमय अजमेरकी भी यही दशा हुई, अजमेर ने भी आज आमेर आदि के नीच दृष्टान्त के अनुसार जाति, कुल, मान, शील सबको ही तिलांजलि दी है। महाराना ने बडे कष्ट के साथ इस दृश्य को भी देखा, प्रतिज्ञा करी कि- चाहे शिशोदिया वंशका नामनिशान मिटजाय, परन्तु इन सब आचारभ्रष्ट, मुसलमानों के साथ विवाहादि सम्बन्ध करनेवाले, स्वदेशद्रोहियों के साथ किसीप्रकारका सम्बन्ध नहीं रक्खूंगा, इस दशा में चाहे शिशोदिया वंशके कुमार और कुमारियों को आजीवन अविवाहित रहनेपडे, वह भी अच्छा है ! इसी अवसर में और एक ऐसी घटना हुई कि-जिस में महाराना ने विपत्ति को अपने आप बुलालिया, अथवा जिसके कारण से उनके जीवनका सच्चा गौरव जगत्‌भर सामने प्रकाशित होगया । आमेरराज भगवानदास के वह प्रसिद्ध गुणवान् पुत्र, राजपूत कलङ्क , अकबर के साले मानसिंह सोलापूरको जीतकर, बादशाह के नाम की जय पताका उडाकर बडे आनन्द के साथ दिल्ली को लौटेहुए आरहे थे, मार्ग में न जाने क्या विचारके, एक बार दरिद्र प्रतापसिंह की कुटीपर जाकर, अतिथि बन उन को कृतार्थ करने का सङ्कल्प किया, और कमलमीर के समीप पहुँचकर महाराजा के पास दूत भेजा। मन में कुछभी हो रहो परन्तु लौकिक शिष्टाचार और अपने यहाँ आने वालों का सत्कार महाराना सदाही करतेथे, शिशोदिया कुलवालों को जो कुछ करना चाहिये वही करते थे । राजा मानसिंह के पास से दूतने आकर समाचार दिया कि-महा

राना के यहाँ आज अम्बरराज अतिथिहोंगे, इस आतिथ्य को वह मांगकर ग्रहण करते हैं, महाराना ने उत्तर दिया कि-यह हमारा अहोभाग्य है और अम्बरराज की इसउदारतासे मैं वडा प्रसन्न हूँ, मेरे यहाँ आकरठहरें । महाराना अनुचरों सहित कुछ दूर तक राजा मानसिंह को लिवानेको गये । फिर महाराना की उस नई वसी हुई राजधानी कमलमीर में उदयसागर के किनारे पर एक महाभोज का प्रबन्ध हुआ । एक तो राजा अतिथि, फिर माँगकर आतिथ्य ग्रहण करना, तिसपर भी मेवाड के सदर के शत्रु अकबर बादशाह के सब में प्रधान मंत्री—महाराना की आज्ञा से, जहांतक हो-सकता था बहुत ही उत्तमतासे भोजनका प्रबन्ध हुआ व्रतधारी महाराना स्वयं परिवारसहित, साधारण पदार्थों से ही भोजन निर्वाह करते थे, वन के फलमूलही खाकर रहजाते थे, वृक्षों के पत्तोंपर ही भोजन करलेते थे तथापि आतिथिसत्कार में, मानसिंहसे पुरुष के भोजन के प्रबन्ध में, राजाओं के योग्य नानाप्रकार के व्यञ्जन बनायेगये और उन को रीति के साथ सोने चांदी के पात्रों में लगाने की आज्ञा हुई। संगमर्मर पत्थर के बनेहुए सुन्दर सरोवर के तटपर भोजन का प्रबन्ध कियागया था, जब भोजन तयार होकर सब पदार्थ थालों में लगादियेगये तब राना मानसिंह को भोजन के लिये बुलवाया और महाराना के बडे कुमार अमरसिंह बडे विनयके साथ राजा अतिथि की उचित सेवा और सन्मान करनेलगे । कुमारके अत्यन्त आदर और अभ्यर्थनासे राजा मानसिंह बहुत प्रसन्नहुए और भोजनके आसनपर जाकर बैठगये ॥ सामने बहुत से भोजनके पदार्थ सजेहुए देखकर, शिष्टाचारकी ओर ध्यान देकर मुसकुराते हुए कु-

हनेलगे कि–ओः! इतनी शीघ्र इतनेप्रकार के उत्तम २ भोजन तयार होगये! इससमय इस में से क्या छोडूँ और क्या भोजन करूँ? अमरसिंहने नीचे को मुख करके भूमिको देखतेहुए उत्तर दिया कि–इससमय हम अम्बरराज के योग्य भोजननहीं बनवासके। महारानाके एकअनुचरनेभी कुम्हारकी बात को पुष्ट करतेहुए और अधिक सुजनता दिखाई राजा मानसिंहनेभी इसअवसर पर नेत्रोंको मूँदकर अपने इष्टदेवताका ध्यान किया और फिरएक ग्रास इष्टदेवताके निमित्त निकालकर भोजन करने का उद्योग किया,हाथमें का ग्रास मुखमें देने ही को थे कि–उसीसमय उन को ध्यान आगा और चौंककर एक साथ कहउठे कि–हाँ! अच्छा स्मरण आया,महाराना कहां हैं? क्या बात है कि–वह इससमय यहां देखनेमें नहीं आये? बड़ी उत्कण्ठा के साथ राजा मानसिंह ने कुमार अमरसिंह की ओर को देखा। महाराना के एक मंत्री ने उत्तर दिया कि–श्रीमान् भोजनकरें, मालूम होता है किसी कार्यवश उनको आने में देर होगई है! मंत्री की यह बात मानसिंह को कुछ बुरीलगी और कहनेलगे कि–बडे आश्चर्य की बात है! क्या ऐसा भी होसकता है? कुमार! तुम्हारे पिताजी कहां हैं? उनको बुलाकर लाओ, मैं और वह एक साथही बैठकर भोजन करेंगे। मानसिंह ने दाहिने हाथ में का भोजन का ग्रास थालही में रखदिया, उनके मुख और नेत्रोंपर और भी उत्कण्ठा प्रकाशित होनेलगी, कुमार दृष्टि नीचे को ही करेरहे उत्तर कुछ नहीं दिया। अबतो मानसिंह को कुमार के ऊपर भी कुछ क्रोध आया और क्रमशः उन का सन्देह बढनेलगा, उन्होंने क्रोध के मारे भर्रातेहुए स्वर में कहा कि–कुमार! अभीतक तुम मौन साधेही खडे हो?

क्या कारणहै कि-तुम्हारे पिताजी अभीतक यहां नहींआये? तो क्या उन्होंने अतिथि का पूरा २ अनादर करनेही का विचार करलिया है,तदनन्तर मानसिंह अपने विशाल वक्षःस्थल को ऊँचा करके बैठे और कुछ कहने को ही थे कि-उसी समय कुमारने लौकिक शिष्टाचारके अनुसार, असली बात को छुपाकर, प्रार्थना करी कि-महाराज ! आप अप्रसन्न न हों, अचानक शिरमें दरद उठआने से पिताजी बहुत ही पीडित होरहे हैं, अतएव इस समय आपके साथ बैठकर भोजन नहीं करसके। आप इस बात का मन में कुछ ध्यान न करें, ऐसा होनेसे वह भी विशेष दुःखित हैं। जैसे वर्षा होनेसे पहिले आकाश मेघों से छाजाताहै, तैसेही एकायकी मानसिंह के मुखपर भी क्रोध की छटा छागई और गम्भीर स्वरमें कहनेलगे कि-अमर ! चाहेजितनाहो, अभी तुम बालकही हो ! तुम किसको क्या समझारहे हो ? क्या मैं इस साधारणसी बात का भी भेद नहीं जानसकता हूँ ? इस समय तुम फिर जाकर अपने पिताजी से कहो कि-मैंने आप के शिर में दरद होनेका कारण जानलिया है ! परन्तु जो कुछ होना था वह तो अब होही गया, भ्रमहो या और चाहे जो हो, अब उसके सुलझने का कोई उपाय नहीं है और यदि कोई उपाय है तो-वह स्वयं महारानाही हैं। अमरसिंह ने कुछ उत्तर न देकर, समीप में खडेहुए सेवक को कुछ इशारा किया,वह उसी समय गया और लौट के आकर कहनेलगा कि सत्यही महाराना शिर की पीडा से बडे कातर होरहे हैं, चन में उठने तककी भी शक्ति नहीं है, अमरसिंहभी यथाशक्ति इसी बातकी पुष्टि करनेलगे। मानसिंह का वह अन्न से सनाहुआ हाथ तो बहुतदेर से संकु-

चित होताही जाताथा, अब क्रमशः बैठेही बैठे उस आसन पर से पीछे को हटनेलगे और बार बार एकही प्रकार का उत्तर सुनकर बड़ेही क्रोध में भरकर कहनेलगे कि-कुमार अबके मैं आखिरी बात कहता हूँ कि-जाओ तुम एकबार अपने आप जाकर अपने पिताजीसे सब बात खोलकर कहो, कहदो कि-उनको मेरेसाथ बैठकर भोजन करना पड़ेगा। यदि वह भोजन नहीं करेंगे तो कौन राजपूत अपना है, यह तो मुझको मालूम होजायगा ? और सब बातें खोलकर कह तोसकूंगा ?। हारकर कुमार, 'जो आज्ञा' कहकर चलेगये, इसी अवसर में महाराना का वह अनुचर कहनेलगा कि-महाराज ने हमारी बातपर विश्वास न करके कुमार को भेजा, अच्छा किया ! देखिये वह भी आकर क्या कहते हैं ! मानसिंह पहिले ही से इस सेवक के ऊपर कुछ चिढेहुए थे,इस समय खुद महाराना के ऊपर भी चिढकर कहनेलगे कि-ओहो ! जागताहुआ मनुष्य यदि निद्राका बाहन करके चुप पड़ारहे तो किस की सामर्थ है कि-उसको जगावे ! तुम्हारे महाराना भी इसी प्रकार शिर के दर्द का बहाना करके सच्चे सत्यवादीपने का परिचय देरहे हैं ! वाः व्रतधारी की कैसी अच्छी पहिचान है ! । बाहर से महाराना प्रतापसिंह गम्भीर स्वर में 'क्या व्रतधारी क्या पहिचान ? यह कहते हुए, मंत्री और सरदारों के साथ मानसिंह के सामने आकर कहनेलगे कि--क्यों--व्रतधारी का क्या अधर्माचरण देखा ? लौकिक शिष्टाचार दिखाया है ? अबतक पुत्रके द्वारा आदर सत्कार किया है ? सच्चे कारण को छुपाकर शिरकी पीड़ा का बहाना कहलाकर भेजा है ? क्या यह मेरा अपराध है ? अम्बरराज ! क्या कहूँ-जीवन भरमें तुम कभी भी सामाजिक

ऊँच नीच का विचार नहीं किया, पिताके समय सेही तो वि-
धर्मी यवनों के चरणों में सर्वस्व अर्पण करते चले आरहे हो,
इसकारण हिंदू समाजकी रीति नीतिको आप क्या जानसकते
हैं ? देखो हिन्दू किसीको भी निरर्थक पीड़ा देना नहीं चाहता
है, विशेषतः जो अतिथि हो उसको तो सब प्रकार से संतुष्ट
करना ही हिन्दू का धर्म है। अम्बरराज ! इसकारण ही अब
तक आपको मेरे शिर में पीड़ा होने की बात सुननी पड़ीथी,
क्या और अबभी असली बात सुनने की इच्छा है ? मानसिंहने
घमण्ड के साथ उत्तरदिया कि–दिल्ली के बादशाहका दाह-
ना हाथ, अम्बर का राजा असली बातको ही सुनने का
अभिलाषी है। मेवाड़ के महाराना से कपटभरी मिथ्यावात
नहीं सुनना चाहता। महारानाने उत्तर दिया कि–अच्छा !
ऐसाही सही–जो राजपूत क्षत्रिय धर्मको तिलाञ्जलि देकर,
अपनी मर्यादा और वंशके अभिमान को भूलकर, तुच्छ धन
और सम्पदा के लोभ से अपनी बहिन तुरक के साथ में
अर्पण करसकता है, वह–यदि अवसर आपड़े तो–तुरकों के
साथ बैठकर खानपान नहीं करेगा, इसका कैसे विश्वास कि-
याजाय ? सूर्यवंशी शिशोदिया कुलका राना प्रतापसिंह क-
दापि ऐसे पुरुषके साथ बैठकर भोजन नहीं करसकता, और
ऐसे पुरुष की भी इसप्रकार की इच्छा करना कम ढिठाई
नहीं है। इतना सुन मानसिंह ने कहा महाराणा बस बहुत
होली अब और अधिक सुनने की मुझ को आवश्यकता नहीं
है। राजा मानसिंह बिजली की समान वेग से आसनपरसे
उठकर खड़े होगये। अपमान और अभिमानके कारण ऐड़ीसे
लेकर चोटीतक उनका सारा शरीर जलउठा, मुखलाल२ होगया
और नेत्रों के पुतलियें स्थिर होगईं। बुद्धिमान मानसिंह ने उस

समय आपेको सम्हाला मन के क्रोध को मन में ही पीगये। भोजन के लिये आसनपर बैठकर उन्होंने इष्टदेवताके निमित्त जो कईएक ग्रास निकाले थे केवल उनको ही यत्न के साथ उठाकर प्रेमपूर्वक अपनी पगडी में रखलिया, फिर मन ही मन में कहने लगे कि--ठीक ही हुआ है, मैंने अपने आपही तो शिर झुकाकर इस अपमान को उठाया है, प्रतापसिंह ने मुझे निमन्त्रण थोडे ही दिया था, मैंने विनाबुलाए आकर अपने आप ही तो आतिथ्य चाहा था, इसकारण उसका ऐसा फल होना उचित ही था,इससमय वृथा अभिमान करने का प्रयोजन नहीं क्या है ? फिर प्रकाशरूप से धीरता के साथ कहने लगे कि महाराना। आपने जो अच्छा समझा वही किया है, इस में मुझ को कुछ नहीं कहना है, परन्तु इतनी बात आप समझ दीखिये कि-आपके सम्मान और सुख स्वच्छता को अटल बनाए रखने के लिये ही हम दिल्ली में बादशाह की शरण होकर पडे हैं। तेजस्वी और स्पष्टवक्ता प्रतापसिंह ने मुसकुराकर उत्तर दिया कि-यह साधारण बात नहीं है।अंबरराज। ऐसी उदारनीति आपने किस से सीखी है ? हमारे सन्मान और सुख स्वच्छन्दता को अटल रखने के लिये ही क्या आपलोगों ने अपनी बहिन बेटियें बादशाहके हाथ में सौंपी हैं?इतना सुन महाराना के अनुचर लोग बडे जोर से हँसउठे, बडे कुसमय में महाराना से मिलने को यात्रा की थी,पद २ पर अपमान होता है, यह सुनकर मानसिंह के क्षोभका कुछ ठिकाना नहीं रहा,और कुछ बात न करके मानसिंह शीघ्रतासे अपनेघोडेपर चढ़गये,महाराना की ओर को तीव्रदृष्टि करके रुके कंठसे कहनेलगे कि–प्रतापसिंह स्मरण रक्खो अब शीघ्रही तुमको इस ढिठाई का उचित फल भोगना पड़ेगा। यदि मैं यथार्थ क्षत्रियसन्तान हूँ तो अवश्य

ही तुम्हारे घमण्डको नष्ट करूँगा, नहीं तो मुझको मानसिंह न कहना। महाराना ने शेर की समान गर्जकर उत्तर दिया कि--सच्चा वीर कभी अपनी प्रशंसा नहीं करता है, चाहेसो हो, इससमय तुम्हारी तेजस्विता से मैं बड़ा प्रसन्न हुआहूँ रणभूमि में सामना होनेपर इससे भी अधिक प्रसन्न होऊँगा। इसीसमय महाराना के समीप खड़े हुए एक सरदार हास्य में कह उठे कि--बहनोई को साथ लेते आना ! यह सुनकर महाराना के सब अनुचरों ने मिलकर फिर अट्टहास्य किया परन्तु परम अपमानित मर्मपीडित मानसिंह ने फिर एक पलकभर भी अपेक्षा न करके घोडे के जोर से चाबुक लगाई मानो जो कुछ क्रोध था वह सब विचारे घोडे के ऊपर ही झाडा। घोडा भी पोइयें भरताहुआ चलदिया। प्रतापसिंहने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि शीघ्रही इस स्थान को पवित्र करो, यह सब अपवित्र अन्नभोजन, कुत्ते गीदड़ों को डालदो फिर कुमारसे कहा कि अगर!तुम अभी इन आभूषणोंको उतारो और स्नान करके पवित्र हो ओ,आओ मैंभी गंगास्नान करूँगा। महाराना के सबही लोग, मंत्री, सरदार सेवक जोकोई उस भोजन स्थान मे उपस्थित थे, उन सबही ने और इतना ही नहीं किंतु जिन्होने दूर खड़े होकर केवल नेत्रों से मानसिंह को देखाही था उन्होंने भी स्नान किया और वह भोजन स्थान उसी समय गंगाजल से धुलवाकर पवित्र कियागया। इधर परम अपमान पायेहुए मानसिंह ने भी दिल्ली पहुँचकर बादशाहको प्रतापसिंहका सब व्यवहार आदिसे अन्ततक सुनाया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद !

जलतीहुई अग्नि मे घी की आहुति पडगई। एकतो प्रताप

सिंह, अकबर के सामने माथा न नवाकर आजतक तेज के साथ चले आते थे, उसके ऊपर और यह वीरों के व्यवहार मानसिंह के ऐसे अपमानको बादशाह ने अपने अपमान की समान समझा, क्रोध के कारण बादशाह के नेत्रों से अग्नि की चिनगारियें निकलनेंलगी, बादशाह कुछ विचार न करके एक साथ कह उठे कि–बहुत जल्द जंग की तयारी करके मेवाड की धूल उडादो, उस बेहोश काफिर को बहुत जल्द इसबजा काररवाई का नतीजा दिखाओ। फिर कुछ सावधान होकर कहा कि–मानसिंह! मुझको तुम सलीम से भी ज्यादा प्यारे हो, इस में कुछ शकन समझना, तुम्हारी बेइज्जती की चिनगारी ने मेरी छाती म दौंसी लगादी है, देखलेना अब बहुत जल्द इस आग में काफिर प्रतापसिंह को मये सलतनत के जलाकर खाक करदूँगा? ओः! इस नाचीज काफिरका इतना हौंसला!! इतनी शेखी! इस के अनन्तर मन ही मन में कहने लगे कि–मालूम होता है मेरी बारीक नीतिके जाल को काफिर प्रताप ही काटेगा। मैंने कितना वख्त लगाकर, कितने कष्ट से, कैसे यत्न से ईंट के ऊपर ईंट रखकर जो ऊँचा मिलन मंदिर बनाया है, । हिन्दू मुसल्मानोंको एक करने की ख्वाहिश से, हिन्दूपन की जड को कुल्हाड से काटते हुए मैंने जिस दाम्पत्य प्रेम (स्त्री पुरुषों के प्रेम) की रचना की था, जातिभेद तथा और भी कितनी ही हिन्दुओं की हठोंको दूर करके जो हिन्दुओं के मुखमें मुसलमानों के हाथ का अन्न जल देने का उद्योग किया था, काफिर प्रतापने मेरे उस प्यारे मनसूबे को फूँक से उडादिया।बहुत जल्द सब से पहिले जैसे होसके वैसे इस दानाइुश्मन को दीन दुनियांसे खोना चाहिये, नहीं तो मेरे हक में अच्छा नहीं है। बादशाह के हुक्म से, प्रतापसिंह

के घर के भेदी विभीषणरूप सब राजपूत इससमय बुलायेगये सबमें पहिले महाराना प्रतापसिंह के सगेभाई शक्तसिंह आये, दूसरे सागरजी और तीसरे सागरजी के धर्मभ्रष्ट पुत्र महब्बतखां आये। इसप्रकार एक २ करके बहुत से रत्न आये। पाठकों को समझानेकी आवश्यकता नहींहै, यह सब ही स्वदेशद्रोही, कुलाङ्गार, राजपूत-कलङ्कथे, इनसबकी सहायतासे ही अकबर बादशाह भारत साम्राज्य के ऊँचे आसन पर बैठसके थे। अकबरने पहिले शक्तसिंह की ओर को मुख करके कहा कि-ऐ तकलीफज़दा नौजवान! इतनेदिनों के बाद उस, तेरी वेइज्जती करनेवाले, गन्दाखयाल, मक्कार भाईको, अपने कियेका नतीजा मिलेगा, परमचतुर बादशाह ने इसीप्रकार एक २ करके सबों के मन के अनुसार बातें कहकर, उनका मन वश में करलिया। प्रतापसिंह से किसको क्या कष्ट पहुँचाहै और प्रतापसिंहके विरुद्ध किसकामकोकौन चित्तलगाकर करसकेगा, यह सबतत्त्व अकबरने जानलिया। तुम अपने हाथ से अपने घर में आग लगाने को बैठे हो, फिर घर लूटनेवाले को उससे आनन्द क्यों नहीं होगा? उस के लिये मार्ग तो तुम ने ही स्वच्छ करदियाहै! हा! सर्वनाशक आपसकी फूट!! नष्टबुद्धि शक्तसिंह बादशाह की मीठी बातोंमें आकर परमानन्दित हो कहनेलगे कि जहांपनाह! तो सुनिये, प्रतापसिंह को शकिस्त देने के लिये हमको बहुतसी फौज दरकार होगी, क्योंकि-प्रतापसिंहके पास कम से कम बाईस हजार लड़ाके होंगे, उन में भी........बादशाह चौंकउठे और आँखें फाड़कर कहनेलगे कि--ओः! क्या कहा? बाईस हज़ार! प्रतापसिंहके पास इतनी फौज होगी? शक्तसिंहने कहा, जीहाँ! जहांपनाह! इस में भी राजपूत स-

रदार, जागीरदार और भीललोग सिपाहसालार हैं। राजपूत सरदार बड़े तेजस्वी हैं और मौतका सामना करने में भी हटनेवाले नहीं हैं; तथा जंगली भीललोग कौशली, क्षिप्रगति और धनुर्विद्या में प्रवीण हैं, विशेष करके दुर्गम और ऊँचे पहाड़ों पर वह बड़ी आसानी और चतुराई के साथ संग्राम करसकते हैं, वनविलावों की समान उनकी चाल बड़ी चंचल और विलक्षण है। पहाड़ों की तलैटियों में, गुफाओं में, चोटियोंपर वह इसप्रकार से छुपजाते हैं कि-एकायकी उनको कोई नहीं देखसकता। इसके सिवाय उनके पास एक और अचूकशस्त्र है, अवसर मिलनेपर वह स्थान२ पर बहुत से छोटे २ पत्थर इकट्ठे कररखते हैं, जब और कुछ नहीं बसाती है, सब प्रकारसे हारजातेहैं तोउन पत्थरोंके टुकड़ोंकी सहायतासे शत्रुओं को निर्मूल करने की मन में ठान लेतेहैं। महाराना प्रतापसिंहको ऐसे दुर्दान्त भीलोंकी भी सहायता है बादशाह शक्तसिंह की बातें बड़े ध्यान के साथ सुननेलगे, और निश्चय किया कि-प्रतापसिंह के घरके भेदी शक्तसिंह की बातें अक्षर २ सही हैं। इस समय प्रतापसिंह को जीतने के लिये कौनसी नीति से कामलेना ठीक है, यह बात बादशाह ने चतुराई के साथ शक्तसिंह से पूछी और कहा कि-भाई! जब तुम अनेकों गुप्तबातें मुझे बतादोगे तो सत्यही समझना इस काम के सिद्ध होजानेपर तुमको मुँहमाँगा ईनाम दूँगा। शक्तसिंहने कहा-हुजूर की महरबानी ही सबको सब से बढ़कर ईनाम है। अभी मैंने जो कहा था वह एक दिन जब उन जुझारे और परमतेजस्वी राजपूतलोग तथा दूसरी ओर ऐसेही चतुर और निडर भीलोंके साथ, युद्ध होगा तो एक नई ही युक्ति चलनी पड़ेगी! बादशाह चित्तमें बड़े प्रसन्न होकर

बोलउठे कि-अच्छा ! अच्छा ! बताओ, तुम जैसे कहोगे मैं उसी तरह चढ़ाई का बन्दोबस्त करूँगा, कहो-क्या कहते हो ? । शक्तिसिंह ने कहा-जी हाँ मैं उस बातको कहताहूँ, सुनिये राजपूत सेनाका सबसे बढ़कर भरोसा अस्त्रपरहै, उनके अस्त्र-तलवार, बरछा और बल्लम हैं, तथा कभी २ धनुषबाण से भी कामलेते हैं, और भीलोंका ब्रह्मास्त्र तो पहिले ही बताचुका हूँ, पत्थरों के टुकड़े और धनुषबाण, इस दशामें हमको एक नई चीज इकट्ठी करनी पड़ेगी । बादशाहने कहा-बहुत अच्छी बात है, बताओ, उसी चीजका बन्दोबस्त कियाजाय शक्तिसिंहने कहा-तोप बन्दूक और गोळे गोलियें वगैरा चाहिये, जो काम सैंकड़ो अस्त्रों से नहीं होसकता वह एक तोप सेही सिद्ध होजायगा, राजपूत चाहे जैसे लड़ाके हों, और भील भी चाहे जैसे चलते पुरजे हों, तोप बन्दूकों की दशबीस ही गर्जनाओं से, सैंकड़ों राजपूत और भील दहलजायँगे, सिंहनाद से तोपों को दागनेपर सैंकड़ों जिधर तिधर को औंधे होजायगे इस की कोई ठीक नहीं है, हाथ की तरवारें और धनुषबाण हाथ में ही रहजायंगे, क्या शक्ति है ? कि-फिर वह हमलोगोंपर प्रहार करसकें, इस लिये ही कहता हूं कि-जहांपनाह ! शीघ्रता से इस चढ़ाई के लिये गोले बारूद का प्रबन्ध होना चाहिये । १ नबंबर के इस घरके भेदी विभीषण की सलाह सम्मति से, बादशाह के हृदय में कैसे अलौकिक आनन्द की हिलोरें उठीथीं, उसका पाठक महाशय स्वयंही अनुभव करसकते हैं इसी प्रकार कितने ही घरभेदी विभीषणरूप राजपूत कुलकलङ्कोंने, उस समय वहां आआकर आसन लिया और स्वदेश तथा स्वजातिके सर्वनाश की युक्ति बताई । परमचतुर बादशाहने एक २ करके सब

के ही हृदय का अन्त टटोलालिया और उनमेंसे जिनको सवा शेर समझा, उन २ कोही मनमें चुनलिया और युद्धके समय सेनापति वनाकर भेजने का निश्चय करलिया। उनमें से ये मृत महाराना उदयसिंह के अन्यतम पोत्र (पोते)–सागरजी के गुणवान पुत्र–धर्मभ्रष्ट, मुसलमान नामधारी महव्वतखाँ, खाँ महाशय नामक के नौकरथे। और उस समय माला के सुमेरु रत्न से भी वढकर यत्न से रखने योग्य धन–परम प्रिय,साहस, वीरता, बुद्धिमानी और बाहुवल में जो वादशाह का दाहिना हाथ थे, तथा अपनी जातिके साथ द्रोह करने में जो निःसन्देह जगत् भर में अनूपम थे, उनको वादशाह क्याकाम सौंपें, इस विचार में गोते खाने लगे।अन्त में प्यारे वेटे सलीम को ही जव, सेनापति (जनरल) वनाकर भेजने का निश्चय किया तव अगत्या उस अमूल्य रत्न को पुत्र के साथ भेजना पडा। क्योंकि–जिस को सेनाका सव भार सौंपाजाय,ऐसा सुयोग्य और प्यारा निजपुरुष दूसरा कौन मिलता ? वास्तव में इस रत्न के न होनेपर वादशाह किसीप्रकार भी संसार में अपनानाम इतना प्रसिद्ध नहीं करसकते।हाय! पतितजीव! ऐसा शक्तिमान् पुरुष होकर भी तूने हीनवुद्धि के वश में हो, अपनी जाति को पैर से ठकुराकर,विधर्मी विजाति को गोदमें लिया ? मानसिंह ! यदि तुम मेवाड के हिमायती होते ? नहीं नहीं, ऐसा होने से विधना की रचना अटल कैसे रहती ?– देवताओं का शाप फलीभूत कैसे होता ? । जलाओ,जलाओ अपनी जाति को दहकती हुई अग्नि में झोंकदो ! तुमको यही करना चाहिये। मानो शैतान ही अतुल शक्तिधर होकर उस समय भूतलपर प्रकटहुआ ?। राजपूत कुलकलङ्क ! एकदिन तुम ने वंगाल के प्रतापको यमपुर पहुँचाकर वंगाल के हिन्दु-

ओंका सर्वनाश किया था और आज हिन्दूकुलपति राजपूताने के महाराना प्रतापसिंह का सर्वनाश करनेको, सारे मेवाड का सर्वनाश करने को बैठा है ! ओहो ! तुम्हारी करतूत का स्मरण आते ही नेत्रों में जल भर आता है, अस्तु । अन्त में सबकी स्मति से निश्चय होगया कि युद्ध की भूमि में सेनापति (जनरल) होंगे वलीअहद (युवराज) सलीम, उनके सहायक होंगे महब्बतखाँ और मानसिंह होंगे-युद्धसमुद्रके मल्लाह(फौजी लार्ड) । इन के सिवाय शक्तसिंह तथा अन्य पतित राजपूत, समय २ पर सम्मति और सहायता देने के लिये उनके साथ रहेंगे । बहुतसी मुगलों की सेना और अनेकों प्रकार की युद्ध की सामग्रियों को साथ लेकर, नियत करेहुए दिन उन्होंने मेवाड पर चढाई करने के लिये यात्रा करदी । घोडोंकी हिनहिनाहट,हाथियोंकी चिंघाड़ और फौजका दीन२अली२शब्द चारों दिशाओं को कम्पायमान करनेलगा । आज हल्दी घाट पर दुर्गम पहाडी घाटी में राजपूतों के भाग्य की परीक्षा का आरम्भ हुआ ॥

बारहवाँ परिच्छेद ।

क्या यह वही हल्दीघाट है?–जहाँ सहस्रों राजपूतोंने,अपने देशकी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिये हँसते २ मृत्यु को आलिङ्गन किया था ! क्या यह वही पवित्र तीर्थ है ?–जहाँ चौदह सहस्र क्षत्रिय वीरों ने अनुपम वीरता दिखाकर अनन्त काल के लिये अनन्त निद्रा का आश्रय लिया था ।, क्या यह वही दूसरा कुरुक्षेत्र है ?–जहाँ कितने पिता, कितनी माता, कितनी पत्नियें और कितने पुत्रों ने–अपने जीवन का अवलम्बन खोकर, बडे कष्ट से देहका भार धारण किया था ।

हाय ! कालवश सब जातारहा, अब केवल पवित्र स्मृति रह-गई है, उस स्मृति को , अतिपवित्र और परमप्रिय होने के कारण, सहृदय कवि और स्वदेशप्रेमी लेखक, भीतर ही भीतर जागृत रखते हुए इतिहास में लिखते चले आते हैं । हल्दी घाट की उस अतिसङ्कीर्ण (पिचपिच) पहाडी घाटी पर आकर मुगलों की सब फौज इकट्टी होगई । एक ओर कमल मीर का मेरुदुर्ग ऊँचा मस्तक करे विराज रहा था, दूसरीओर मीरपुर का ऊँचा पहाडी शिखर स्थित था । आरावली के उन घने पहाडों की लँगार बहुत दूरतक बराबर चलीगई थी, इसके चारोंओर घने जंगल की झाडियें थी, जहाँ तहाँ पहाडी नादियें ठेडी वेडी होकर छल २ करती हुई चलीआरही थीं, चारोंओर पहाडरूप किले से घिरीहुई तलैटीथी, वहाँ सर्वत्र प्रकृति की एकसमान ही शोभाथी, उसही दुर्गम पहाडी घाटीका नाम हल्दीघाट है, राजपूतोंकी वीरता के गौरव से यह हल्दीघाट चिर स्मरणीय होगया है ।

जिसदिन मानसिंह की महिमानदारी के विषय की दुर्घटना हुई थी, उसदिन से ही महाराना प्रतापसिंह ने समझ लिया था कि--अब बहुत ही शीघ्र युद्धके लिये उद्यत होना पडेगा, इसकारण वहभी निश्चिन्त नहीं थे । राजपूत सरदार और मंत्रियों को बुलाकर शीघ्रही प्रबन्ध करने लगे, सबने ही इनकी आज्ञाको शिर नमाकर स्वीकार किया सबही जानकी बाजी लगाकर अपने देशकी स्वाधीनताकी रक्षा करनेको उद्यत हुए तदनन्तर महारानाने भीलोंका बुलाया, भीललोग महारानाको देवता की समान मानकर भक्ति करते थे । प्रतापसिंह के मन के अभिप्राय को जानकर वह आनन्द और उत्साहसे मतवाले हो उठे और एक आनन्दसूचक जयध्वनि करके

महाराना को प्रणाम करनेलगे। महाराना ने भी निर्विकार चित्त से उन सरल, सत्यप्रतिज्ञ, अकपट, विश्वासी, वन के भीलों को प्रीति में भरकर हृदयसे लगाया, वहभी देवताका आलिंगन मिला समझकर कृतार्थ और धन्य हुए।

तदनन्तर एक दिनदूतने आकर समाचार दिया कि-आरावली की दुर्गम पहाड़ी घाटी को शत्रुओं की सेनाने आकर घेरलिया है। आकाश में जो एक श्यामवर्ण मेघ का टुकड़ा सा दीखा था, वह देखते ही देखते सघन मेघमंडन के रूप में आगया है, सारा आकाश उसीसे छागया। बहुत ही शीघ्र एक युद्ध होगा, इसबात के विचार के साथही साथ, समाचार मिला कि- शत्रुओं की सेना आरावलीकी दुर्गम पहाडी घाटीमें इकट्ठी होरहीहै, इतना सुनतेही सहस्रों राजपूतों के हृदय में वीररस उमड़ आया और गर्जनेलगे तथा साथही सारा वह दुर्धर्ष भीलभी हुंकारें भरनेलगे। भाग्यवान् प्रतापसिंह ने, व्रत के उठानेमेंही इस अलौकिक दृश्य को देखकर समझा कि-मेरा व्रत धारना निष्फल नहीं होगा और महाराना के नेत्रोंमें आनन्दके आंसू भरआये। वास्तव में शक्तसिंह ने बादशाह से जो कुछ कहाथा वह ठीकही था महाराना के पक्ष में बाईस सहस्र राजपूत वीरथे, इनके सिवाय भीलों की सेना अलग थी। उस समय वह अगनित वीरसमूह युद्ध के साज से सजकर हल्दीघाट की ओर को चलदिये। सब योधाओंने दृढ़करलिया कि-शत्रुओंकी सेना को अब और आगे को नहीं बढ़ने देंगे, उस दुर्गम घाटी में ही उन की युद्ध की खजलाहट को मिटादेंगे। महाराना ने भी सबों की इस संमति को ही अच्छा समझा। हल्दीघाट के युद्धका ठीक२चित्र दिखानेकी इसलघु लेखकमें शक्ति नहीं

है। पाठक महाशय! एकवार मन के नेत्रों से धर्मक्षेत्र कुरु-क्षेत्र को देखिये, उस अठारह अक्षौहिणी सेना की उन भीम भैरव–रुद्र मूर्त्तियों को कल्पनाके नेत्रोंसे देखिये, उस अटूट रुधिर की धार, जय पानेवालोंके आनन्दनृत्य और रथियों के उन्मत्तवेश को देखिये, घायलों की 'पानी पिलाओं,जल लाओ' ऐसी पुकार और वीरों की विकट हुंकार को कान लगाकर सुनिये, एक ओर को किसी के कटेहुए हाथ पैर शिर और रुधिर की मगन, इत्यादि भयानक दृश्यों को भी देखिये तथा किसी की आधीवात कहतेहुएही मृत्यु देखिये और यह सुनिये कैसा घोर भयावना कोलाहल होरहा है! हू हू शब्द के साथ पवन चलरहा है, सायँ सायँ करतेहुए तीर छूटरहेहैं, तोप वन्दूकों की घनघनाहटसे दिशाएँ अग्नि-मय होरही हैं, धुएँ और धूल से सब दिशाओं में अन्धकार होरहाहै, आकाश और भूमि एक समान दीखरहेहैं। घोडों की हिनहिनाहट, अस्त्रों की झनझनाहट,हाथियों की चिंघार और गीदड़ियों के भयानक शब्द से चारों दिशा काँपीजाती हैं। विराम नहीं है, विश्राम नहीं है, वरावर वीरों के रुधिर से भूमि के रसातल में पहुँचने की तयारी होरहीहै, ओहो! कैसा भयानक विरूप दृश्य है। हल्दीघाट का युद्धभी मानो आजदूसरा कुरुक्षेत्र होरहाहै। प्रवल आंधी की समानएकओर से मुगलों की सेना आनेलगी, दूसरी ओर से महावली राज पूत वीर उनको रोकने के लिये वढे। मानो दोनों ओर से दो उन्मत्त ऐरावत परस्पर आक्रमण करने के लिये वढे। उस दुर्गम पहाडी घाटी में असंख्यों हिन्दू मुसलमान, एक दूसरे को मथित, दलित और नष्ट करने के लिये, छाती फैलाकर खडे होगये। असंख्यों पैदल, घुड़सवार और हाथी

के सवारों की उन प्रलयकारिणी भयानक मूर्त्तियों को देख वन के पशु भी प्राण लेकर भागनेलगे,काले सांप भी बिलों में छुपगये। ज्वारभाटा आनेसे पहिले जैसे समुद्र स्थिर होता है, तिसीप्रकार क्षणभर को दोनों ओर की सेना ने स्थिरता के साथ गंभीरभाव से परस्पर देखा। एकायकी दोनों ओर के सेनापतियों ने अपनी २ सेना को न जाने क्या इशारा किया कि-अचानक दोनोंओर रण का बाजा बजउठा,बाजे की उस उन्मत्त करनेवाली शक्ति के साथ घोड़े हाथी और पैदल सबही उन्मत्त होउठे। दोनों ओर योद्धा परस्पर जुट-गये। मुसलमानों की फौज में से ' दीन दीन ' शब्द की ध्वनि और हिन्दुओं की सेना में से ' हर हर महादेव ' की गुञ्जार सुनाई देनेलगी। वह गंभीर ध्वनि पर्वतोंकी गुफाओं में जाकर गूँजगई, उन गुहाओं में से फिर वैसी ही प्रतिध्वनि निकलकर उत्तेजित वीरों को औरभी अधिक उत्तेजित करने लगी। देखते २ पलक मारनेभर की देर न लगी कि-दोनों ओर से घोर युद्ध का आरम्भ होगया, और क्षणभरमें रुधिर की नदियें बहतीहुई दीखनेलगीं। उसगरम रुधिरकी नदी में पैर डूबजानेकेकारण घोड़े विकट चीत्कार करनेलगे.हाथीउन्मत्त कर गंभीर गर्जना करनेलगे। पैदल योधा ऊँचे स्वर से अ-पनेर पक्षकी जय बोलने लगे। पहिले तलवारों का युद्ध हुआ। वास्तविक वीरजाति तलवारोंका ही युद्ध करती है। तलवारका युद्ध करना संसार में राजपूतो की समान और कौन जानता है, ? असियुद्ध में राजपूतों की समता करने-वाला जगत् में कोई है ही नहीं। उस तलवार के युद्ध में क्या मुगल, राजपूतों के सामने ठहरसकते थे ? ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। यह देखो राजपूतों की प्रचण्ड तलवारों की चोट से

मुगल सेना छिन्न,भिन्न,दलित और मथितसी होरही है और यह देखो--इस दशाको देखतेही मानसिंह और मोहब्बतखाँ की स-म्मतिसे सुलतान सलीम अपनी सेनाको बराबर गोलियोंकीवर्षा करने के लिये हुकुम देरहे हैं। देखो देखो-जिस राजपूतने कुछदेर पहिले इकलेही एक सौ मुगलों के मस्तक काटकर गिरादिये थे, वही इससमय एकही मुगल सैनिक की गोली से घायल होकर गिरगया, उसकी वह वज्रकी समान कठोर हाथ में की तलवार हाथ में से छूटपड़ी। इससमय मुगलोंने समझा कि-अब हम इस महायुद्ध में कुछदिनों जूझसकेंगे। मुगलों की सेना में से, सावनभादों की मूसलधार वर्षा की समान बराबर गोली गोलोंकी वर्षा होनेलगी। कभी बन्दूकें कभी तोपें,कभी और कोई ऐसाही आगवर्षानेवाला अस्त्र च-लनेलगा, परन्तु तलवारें बहुतदेर से म्यानों के भीतर करली गई, कहीं एकाध जगह ही थोडा बहुत तलवार का युद्ध होता रहा, कुछदेर में वह भी बन्द होगया राजपूतों के बा-हुबलको देखकर, मुगललोग वास्तव में अचम्भा माननेलगे महाराना की सेना के चतुराई के साथ तलवार के चलानेको देखकर मुगलों ने मन दमें राजपूतोंकी सराहना की। परन्तु हाय ! वह सब सराहना वृथा हुई। राजपूतों का भरोसा के-वल तलवार, बरछा और धनुबाण पर ही था तथा भीलों का भी भरोसा धनुषबाण और इकट्ठे करेहुए पत्थरों के टुकड़ों पर ही था। हाय ! प्रतापसिंह के पास गोली गोला, बन्दूक, तोप, आदि कोई अग्नि अस्त्र पहिले ही से नहीं था। वह वास्तविक वीर थे, इसकारण वह तलवार, बरछा और धनुषबाण के युद्धको ही जानते थे, सब राजपूतों को यही सिखाया था। अन्त में मुगललोग गोलीगोलों की सहायता

से राजपूतों का विध्वंस करेंगे, इस बातका ध्यान उनको सुपने में भी नहीं हुआ था। राजपूत वीरोंने अद्भुत पराक्रमके साथ तलवार के युद्धको समाप्त किया, उनकी उस अलौकिक वीरता को भाट, कवि और चारणोंने उत्तम २ कविता में गूंथरक्खा है। और वह धनुर्विद्या में प्रवीणभील-धनुषबाण तथा इकट्ठे करेहुए पत्थरों से कितने मुगलों का प्राणान्त करते ?। समुद्र के ज्वारभाटे की समान मुगलों की असंख्यसेना, तिसपर भी उनके पास अनेकों प्रकार के अग्नि-अस्त्र। तुम समर प्रवीण अमित तेजस्वी राजपूत, तुम दुर्धर्ष भील-तुमचाहे जितने गुणवान् क्यों न होओ, तुम्हारे पास तो किसी प्रकार का भी एक भी अग्नि-अस्त्र नहीं है, कि दूरसेही निशाना लगाकर पलभर में सौ २ मुगलों को यमपुरी पहुंचासको। माना कि तुम राजपूत हो तुमने एक बाणसे सौ मुगलों के मस्तक उडादिये, माना कि तुम भील हो, तुमने अपने तीखेबाण के अचूक निशाने से दश-बीस मुगलों का प्राणान्त करदिया और यदि मुगल पहाड की तलैटी में असावधान हुए तो तुमने पत्थरों की वर्षा करके एक साथ सहस्र मुगलों ही को जखमी करदिया और उसमें से सौ दोसौ के प्राणजाते रहे तो क्या उससे समुद्र के ज्वारभाटे की समान मुगलों की असंख्य सेना की कोई भी विशेष हानिहोगी ? और यदि हानि भी पहुंची तो तुम उनके अग्नि-अस्त्र के सामने बहुत देर नहीं ठहरसकोगे। जब बार२ भयानक गर्जना के साथ बन्दूकें छूटती हैं, जब निरन्तर तोपें छूटरही हैं तो तुम हजारों रण की कुशलता क्यों न जानते होओ, सब निरर्थक जायगी। और यदि तुमने असीम साहस के साथ तोपों में घुसकर मुगलों की एक दो तोप छीनभीली तो उससे तुमको क्या लाभहोगा

और उनकी कौनसी घडी हानि होसकती है ? क्योंकि--मुगलों की सेनाभी असंख्य है और उनके पास तोप बन्दूक आदि की सामग्री भी बहुत है। इस दशामें भी जो तुमने केवल तलवार और धनुषबाण की सहायता से ही सहस्रों मुगलोंको यमपुरी पहुंचा दिया, यह तुम्हारीअलौकिक वीरता और युद्धशिक्षा का फल है। परन्तु हाय ! दैव प्रतिकूल है, तुम्हारी अलौकिक वीरता भी तुमको विजय नहीं दिलास की तथापि यह बात हजारोंवार कहेविन किसी से भी नहीं रहाजायगा कि -हल्दीघाट के कई दिन के युद्धमें तुमने जो अलौकिक वीरता और युद्धचातुरी दिखाई है, पृथिवी की हरएक वीरजाति को उससे शिक्षालेना चाहिये।

तेरहवाँ परिच्छेद ।

आज अन्तिम दिन है, शाके १६३२ के श्रावणकी सप्तमी अर्थात् १५७६ईस्वी सन् का जौलाई महीना है, यह दिन भारतवर्ष के इतिहास में स्मरण करने योग्य है, अतः भारतवर्ष की ही क्या सारी पृथ्वी की वीरजातियें राजपूतों की इस दिन की वीरता की कहानी को सुनेंगी, इस दिन ही हल्दी घाट का अभिनय पूरा हुआ, इस अभिनय में क्या विशेषता हुई वह भी संक्षेपके साथ पाठकों सुनाते हैं। व्रतधारी वीरशिरोमणि महाराना प्रतापसिंह ने जब देखा कि–उनके परम तेजस्वी, असीमसाहसी राजपूतवीरों की सेना रुईके ढेर की समान भस्म हुई जाती है और यह दशा देखकर सरदारलोगभी अपनी बुद्धि के काम न देने से हाथ की तलवार हाथ में ही लिये खडे हैं तब तो वह सिंह की समान गरजकर उत्साहभरे शब्दों में कहनेलगे कि भ्राताओं !

अबकी वार और हिम्मत बांधो,मन्त्रका साधन करनेमें मैं भी यथाशक्ति चेष्टा करता हूँ, आओ, चलो, हम मुगलों के सकल अस्त्रों को छीनलें, जो कुछ विधना की रचना है वह तो होगी ही, परन्तु अब विचारने का अवसर नहीं है।

एकायकी महारानाकी सेना में दूने उत्साह के साथ रणबाजे की ध्वनि होनेलगी, वह थोड़े से राजपूत ही, सत्य सत्य ही संहारमूर्त्ति धारण करके, मुगलों की सेना में कूदपड़े, पलभर में सहस्रों मुगलों को भूमिपर सुलादिया। उनके हाथों की बन्दूकें और तोपें आदि बहुत सी युद्ध की सामग्री, राजपूत सेना छीनलाई। परन्तु हाय! ऐसा करने से भी कुछ कार्य सिद्ध नहीं हुआ, विजयलक्ष्मी राजपूतों के प्रतिकूल होगई। पहिले ही कहचुके हैं कि–मुगलों के पास सेना और अस्त्र शस्त्र आदि अपार थे, राजपूत वीर कितनी मुगलसेना को मारते? कितने अस्त्र शस्त्र छीनते? और छीनलेनेपर भी बारूद आदि का प्रबन्ध कहाँ से करते? राजपूतों को तो बन्दूक तोप आदि चलाने की शिक्षाही नहीं मिली थी, इस कारण इस यात्रामें महाराना, दुर्जय साधना करने पर भी सफल मनोरथ नहीं होसके तथापि उनके हृदय की हठ शान्त नहीं हुई। उस स्वदेशद्रोही, भयानक वैरी मानसिंह को इस समय भी वह मतवाले सिंह की समान ढूँढते फिरते थे, महाराना की प्रतिज्ञा भीष्मपितामह की समान दृढ है, उन्होंने महिमानदारी के दिन मानसिंह से स्पष्ट कहदिया था कि–युद्धभूमि में सामना होनेपर मैं आपसे और भी अधिक सन्तुष्ट होऊँगा, वह प्रतिज्ञा, वह तेजस्वित मानो जलती हुई आग की समान उनके हृदय में भरीहुई है। पुरुषसिंह महाराना प्रतापसिंह क्या उसको भूलसकते हैं। सहस्रों आँखें

फैलाकर महाप्राण प्रतापसिंह उस असंख्य मुगलसेना में देखनेलगे कि–कहाँ है वह स्वदेशद्रोही मानसिंह ?, कहाँ है वह राजपूत कुलकलङ्क परमवैरी मानसिंह ? । महाराना चेतक नाम, अतिशिक्षा पायेहुए घोड़ेपर सवार हैं, वास्तव में यह घोड़ा महाराना के ही योग्य है, अपनेस्वामी के गुणसे चेतक युद्धकी चतुराई को खूबजानता है, उसही चेतकपर सवार होकर निर्भय महाराना, भीमपराक्रम के साथ, मानसिंह के लिये, उस अगणित मुगलसेना में घूमरहे हैं, असंख्यों शत्रुओं से घिरेहुए हैं । गुप्तरूप से नहीं और अपने स्वरूप को छुपाकरभी नहीं, किन्तु सबों को विशेषरूप से जताकर कि–मैं राना प्रतापसिंह हूँ–शत्रुओं को इस वातका परिचय देकर भी वह उन्मत्त सिंहकी समान निर्भय होकर उस अगणित मुगलसेना में घूमनेलगे । उनके शिरपर बडाभारी स्वेतछत्र लगाहुआ था और उसके ऊपर राज्यका चिन्ह लालवर्ण का सूर्य बनाहुआ था, उनके आगे लालवर्ण की पताका तेज के साथ फहरारही थी, उनके शरीर रक्षकलोग उनके साहससेही साहसी होकर, मंत्र से मोहितहुए से उनके पीछे २ ही चलेजारहे थे । जैसे बालक खेलमें बहुत से छोटे २ वृक्षोंको कच २ तोडडालता है तिसी प्रकार मानसिंह को खोजने की इच्छा से अपना मार्ग साफ करने के लिये प्रतापसिंह भी मुगलों की सेनाको खण्ड २ करनेलगे, इसप्रकार परम पराक्रम और बडी चतुराई के साथ वह तलवार चलानेलगे, उस समय शत्रुओं की सेना किसी प्रकार भी अपनी रक्षा नहीं करसकी, परन्तु उस समय महाराना के शरीर रक्षक लोग एक २ करके घायल होकर भूमिपर सोनेलगे, परन्तु महारानाने उस परभी कुछ ध्यान नहीं दिया, एक समान

तेज, साहस और दृढ निश्चय के साथ मानसिंह को खोजने के लिये घूमनेलगे, वह प्रभावशाली राजछत्र उस समय भी उनके मस्तकपर लगाहुआ उनकी वीरता, गौरव और सम्मान की घोषणा कररहा था। इसप्रकार एक २ करके बहुत सी शत्रुसेना को काटतेहुए महाराना प्रतापसिंह, मुगलों की सेना के मध्यभाग में जाकर खडेहोगये, परन्तु मानसिंह का पता यहाँ भी नहीं लगा, यहाँ भी उस स्वदेशद्रोही राजपूत कुलकलङ्क का पता नहीं था। तीव्रज्वाला की समान ताप को हृदय में ही रखकर, क्रोधमें भरे, लाल २ नेत्रकरे महाराना ने एक महाशत्रु की ओर को देखा, वह मानसिंह नहीं थे, किन्तु वह स्वदेश का शत्रु, बादशाह अकबर का प्यारा पुत्र सुलतान सलीम था, इसको देख महाराना विचारनेलगे कि-हाय ! इतनी खोज करनेपर भी मुझको स्वदेशद्रोही मानसिंह नहीं मिला, अच्छा ! सलीम ही सही। विषाद हर्षसे उत्तेजित हुए स्वर में महारानाने 'अच्छा मानसिंह नहीं मिला तो सलीम ही सही !' ऐसा कहतेहुए सलीम के समीप पहुँचना चाहा, उत्तम शिक्षापाया हुआ चेतक घोडा, अपने स्वामी के मनकी बातको समझकर एक ही छलांग में सलीम के पास आपहुँचा। वलीअहद सलीम एक बड ऊँचे हाथीपर चढाहुआ उस महायुद्ध के सेनापतिकाकाम कररहा था। अचानक सामने महाराना की उस भयानक मूर्त्तिको देखकर वह भीत, चकित और स्तम्भित होगया । ओहो ! कैसा साहस है ! कैसी अद्भुत तेजस्विता है ! बिना सेना की सहायता के बिना किसी रक्षक को साथ में लिये, अकेले ही मेरी इस असंख्य सेनारूप समुद्र में कूदपडना। धन्य है राजपूतों की वीरता को ! हाय! सलीम को मन ही मन में इसप्रकार धन्यवाद देनेका अवसर

भी नहीं मिला। महावली महाराना ने पलभर में सलीम के सकल देह रक्षकों का प्राणान्त करडाला, फिर विशाल भुजा में विशाल वरछा लेकर मूर्त्तिमान् यमराज की समान महाराना ने सलीम के ऊपर प्रहार किया, इस भयानक घटनाको देखकर सेलिम की सवारीका वह अति ऊँचा मतवाला हाथी भी भयभीत होकर क्षणभर के लिये सूंड को मुह में दबाकर खडाहोगया, और इधर कहही चुके हैं कि-गुणवान् पुरुष के शिक्षा दिये हुए घोडे-चेतकने भी अवसर जानकर, स्वामी की इच्छाको समझकर हाथीके विशाल माथेपर अपना अगला पैर जमादिया, इस अद्भुत दृश्य को क्षणभर सब योधा मौन खडे देखते रहे, महाराना ने एक लहमे की भी देरी न करके सेलिम के ऊपर वह कालदण्ड की समान वरछा छोडा प्रारब्ध वश सलीम इस प्रहार से बचगया, क्योंकि-उस हाथीके हौदेपर लोहे की पत्तर चढीहुई थी, उसमें लगाकर वह वरछा पीछे को लौटा आया, तथापि उस रुधिर के प्यासे अस्त्रका प्रहार सर्वथा निरर्थक ही नहीं गया, किन्तु हौदे में टकराकर लौटते हुए उसने हाथीवान के प्राणलेलिये, उसी समय हाथीवान् हीन होकर नीचे गिरपडा। इधर निरङ्कुश भयभीत हाथी, अपने स्वामी सलीमके हाथका इशारा पाते ही, सलीम को लिये हुए तहाँ से भागनिकला। उस समय परम पराक्रम के साथ गरजते हुए महाराना प्रतापसिंह मुगल सेना को काटनेलगे, परन्तु वह इकले थे, उनके साथ देह रक्षक सरदार आदि कोई नहीं थे। हाथीपर बैठकर भागते समय बादशाहका बेटा सलीम अपनी सेना को यह जतागया था कि-जो कोई प्रतापसिंह को प्राणान्त करेगा या बाँधकर ले आवेगा उसको मैं अपने गले का यह बेश कीमती हार इनाम में दूँगा। अब तो

मुगलसेना उत्साह में भरकर मतवाली होगई, चारों ओर से महाराना को घेरलिया, तीनबार महाराना के प्राणोंपर संकट आया, उनके एक गोली और तीन तलवारों के घावहुए सारा शरीर घेरतहँ घायल होगया, खूनकी धारों से सारा शरीर रँगगया, तथापि उनकी भौंतक में बल नहीं पड़ा, उन्होंने मन में ठान लिया था कि—प्राण जाते जाते तक शत्रुओं का संहार करूँगा, वह अपनी इसी प्रतिज्ञा पर दृढ रहे। प्रकाण्ड श्वेत छत्र और सूर्य प्रतिमा का राजचिन्ह उस समय भी गौरव के साथ उनके मस्तक पर विराजमान था। परन्तु हाय उस समय और कुछ न चली, थोडी ही देर में राजपूतों की सब आशाएँ चिरकाल के लिये लुप्तहुआ चाहती हैं, यह देख—थोडीही दूर से एक महाप्राण वीर अपने मन में दुःखित होते हुए महाराना के समीप आये और नेत्रों में जलभरकर धीरे धीरे महाराना से कुछ प्रार्थना की, परन्तु महाराना ने उस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया, तबतो युवावीर ने मन ही मन में विचारा कि—नहीं अब बूझने का सम्मति लेने का अवसर नहीं है, हाय! मेवाड का उज्ज्वल सूर्य अब अस्त हुआ जाता है, नहीं मैं जीवित रहते इस घटना को नहीं देख सकता। यद्यपि मैं जानताहूं कि—राजपूतोंके दृष्टि में मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, तथापि हमारे लिये हमारे देश के लिये महाराना की मृत्यु तुच्छ नहीं है। हम से कितने ही राजपूत प्रति दिन मरते हैं और जन्मते हैं, हम समान लोगों के मरने जीने से पृथ्वी का कुछ नहीं जाता आता है, परन्तु माहाराना से महापुरुषों के जीवन मरण से पृथ्वी की बहुत ही लाभ हानि होते हैं, इसकारण जैसे भी बने महाराना की रक्षा करना चाहिये। महाराना के जीवित रहने से देश को बहुत कुछ लाभ

होगा। मेवाड का पहिलासा सौभाग्य फिरकर न आओ, चित्तौर स्वाधीन न हो और चाहें व्रतकी समाप्ति में भी विघ्न पड़जाय, तथापि राजपूतों की वास्तविक श्रेष्ठता अटल बनी-रहेगी, राजपूतों का रुधिर पवित्र रहेगा, और हिन्दूकुल की स्त्रियें, मुगलोंकी बेग में या बाँदियें बनकर जन्म जन्मान्तरके लिये महापातककी भागिनी नहीं होंगी। इसकारण इस नन्त अवसर पर महाराना के जीवन की रक्षा करना परम आव-श्यक है। माता जन्मभूमि! दुर्बल सन्तान के हृदय में बल दे, जिससे कि-मरते २ तक देश का कुछ हित करके जासकूं! मुखसे कुछ न कहकर उस महा प्राणवीर ने शीघ्रही महाराना के समीप जाकर फुरती के साथ महाराना के अनुचर के हाथ मेंसे वह राजछत्र और सूर्यकी प्रतिमा छीनली तथाउसी समय अपने सेवकों को इशारा किया कि-मेरी आज्ञा का पालन करो, झालापति महाराज मान्नाका इशारा पाते ही एक अनु-चर ने तो महाराना प्रतापसिंह वाला छत्र उनके ऊपर लगाया और बाकी के चतुर सेवक झालापति महाराज मान्ना की इ-च्छानुसार ऊँचे स्वर से उनको ही ' जय हो मेवाड पतिकी' ऐसा कहकर पुकारने लगे। अबतो मूर्ख मुगल सेनाने झाला पति को ही प्रतापसिंह समझा, एकतो राजछत्र और तिस पर भी मेवाड पति शब्दसे पुकारे जाना, फिर धोखा पाने में विचारे मुगलोंका भी कौन दोष था ?। अब महाराना सब रहस्य को समझा कि-उनके प्राणों की रक्षा करने के लिये और मेवाड की मंगल कामना से ही स्वदेश भक्त झालापति महाराज मान्नाने यह अपूर्व आत्मबलिदान का सङ्कल्प किया है, महाराना ने इच्छा न होने पर भी लाचारी से युद्ध भूमि को त्यागा, शारीरिक क्लेश के साथ उन के चित्त को

भी दारुण कष्ट हुआ, वह विचारनेलगे कि–हाय ! आज मेरेही लिये सहस्रों राजपूतवीर हल्दीघाट की संकीर्ण पहाडी घाटी में सदाके लिये नेत्रमूंदकर सोगये। कुछ चित्तकी व्याकुलता और कुछ शारीरिक खेद के कारण भी महाराना मानो किङ्कर्त्तव्य विमूढ होकर संग्राम भूमिको छोडआये, कई एक विश्वासपात्र भील और राजपूत सरदार इस समय उनको निरापद स्थान में लेगये। और उधर वह महाप्राण वीर झालापातिमान्ना अद्भुत वीरता के साथ संग्राम करके सहस्रों वीरों के प्राणलेकर वीरगतिको प्राप्तहोगये और जगत् में अपनी अक्षयकीर्त्ति छोडगये। इन महावीरके अन्तके साथबचेहुए राजपूतों का भी साहस टूटगया। मुगलों के शिरपर विजय वैजयन्ती शोभा पानेलगी। इसप्रकार हल्दी घाट के महासंग्राम में चौदह सहस्र राजपूतों ने, हँसतेर अपने जीवनकी आहुति देदी। इतिहास स्पष्ट अक्षरों में इस वीरताकी तुरही बजारहा है।

चौदहवां परिच्छेद.

प्रारब्धवश जो कुछ होना था वह तो होगया,परन्तु इस घोर विपाद में भी स्वर्गीय घटना नेत्रों के सामने आती है हल्दीघाट के इस दूसरे कुरुक्षेत्र में महाराना का पराजय भी गौरव की कहानी से भरा हुआहै। पराजयमें भी महाराना की वीरता, शूरता और निर्भिकता पूर्णरूप से झलकती है, यहबात उनके परमशत्रु को भी मुक्तकंठ होकर कहनी पड़ेगी यही कारण था कि– उस समय विजय पाकर भी मुगलोंने सहस्रों मुख से महाराना की प्रशंसा की। यह दशा देख आज शक्तसिंह का पत्थर हृदयभी आज महाराना के लिये भरआया। उस अपमानित ताड़ित, बदला लेने के लिये

व्याकुलित, और भाई का खून देखने के लिये लोलुप होने वाले शक्तसिंह के प्राण भी आज महाराना के लिये कातर होगये। महाराना के उस अनूपम पराक्रम, जगत् को अचंभे में डालनेवाली वीरता, अपने देश की रक्षा के लिये वह प्राणों की बाजी और तिसपर भी उनकी रक्षाके लिये एक महाप्राणवीर राजा को अपने प्राणों का बलिदान देतेहुए देखकर एकायकी शक्तसिंह के चित्त में न जाने क्या अलौकिक भाव प्रकट हुआ, जिस के कारण शक्तसिंह विचारने लगे कि—क्यामैं भी एक राजपूतहूँ? क्यामैं भी कोई शिशोदिया का कीर्त्तिमान् पुरुष हूँ? क्या मैं इन प्रतापसिंह का छोटा भ्राता हूँ? जैसे बिजली की गति एक लहमे में आकाश के एक छोर से दूसरे छोरतक फैलजाती है तैसे ही शक्तसिंह के प्राणों ने भी अचानक एक चिन्ता से पीड़ित होकर एक मुहूर्त्तभर में शक्तसिंह को नया बनादिया। शक्तसिंह विचारनेलगे कि—मेरे राजपूतपने को, मेरे शिशोदिया वंश में जन्म लेने को और मेरे महाराना का छोटा भाई कहलाने को धिक्कार है! नहीं तो मेरे प्राणों में से वह स्वदेशभक्ति और स्वजातिभक्ति कहाँगई? मेरा अभिमान निरर्थक है मैंने अपने हाथ से ही अपनी जाति का सर्वनाश किया! धिक्कार है मुझको!! अपने ज्येष्ठभ्राता वंश के मुकुटमणि, कुल के दीपक, पवित्रताके आधार, राजपूतजाति की आशा भरोसे के स्थल, उन पुण्यात्मा भाई के ऊपर क्रोध करके मैंने अधोगति को इस दशातक पहुँचादिया, स्वदेशद्रोही कुलाङ्गार बनकर, घरभेदी विभीषण की करतूत करके हाय! मैंने भाई के रुधिर से तृप्त होने की मनसा की, धिक्कार है मेरे मनुष्य नामको। शान्त हो, नरक की अग्नि शान्त हो, मन की क-

खींच दूर हो, हृदय की चंडालता, क्रूरता और कुटिलता दूर हो, आज मैं अपने पत्थर हृदय में प्रेमकी नदी बहाऊंगा, माता दयामयी परमेश्वरि ! अधम सन्तान को क्षमा करना, ऐसा विचार करतेहुए शक्तसिंहके नेत्रों में से झर२करके आँसुओं की धारा बहनेलगीं। इधर जब महाराना प्रतापसिंह संग्रामको छोडकर लौटे तो दो मुगलों ने धीरे२ उनका पीछा किया, इस घटना को पश्चात्ताप करतेहुए शक्तसिंहने देखा, उन्होंने विचारा कि-अभी बडे भाई के प्राण संकटसे बचे नहीं हैं। यह दोनों घुड़ सवार मुगल इससमय असावधान महाराना के पीछे२ जाकर उनकी अज्ञात दशा में पीछे से पहुँच कर प्रहार करेंगे, परन्तु मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगा जिस के ऊपर इस विशाल साम्राज्य का भार अर्पित है, अबभी सहस्रों राजपूत जिनके मुखकी ओरको देखकर अपने देश की स्वाधीनताको रखने के लिये फिर शस्त्र उठावेंगे ऐसे महान् जीवन को मैं कदापि नष्ट नहीं होने दूंगा। मुहूर्त्तभर की भी देर न करके शक्तसिंह छुपेहुए उन दोनों के पीछे चलदिये। भग्नहृदय, महाराना चित्त में विकल होतेहुए चेतक घोडेपर चढेहुए चलेजारहे हैं, प्राण उदास हैं, किधरही ध्यान नहीं है, उन के प्राणों को आज कैसा कष्ट होरहा है; इसबातको वही जानते हैं। घुडसवार दोनों मुगल चलते २ उन के समीप पहुँचने हीं को थे कि-इतने ही में एक पहाडी नदी आगई, उत्तम घोडा चेतक एक कुलाँच में ही अपने स्वामी को नदी के परलेपार लेजाकर चलनेलगा, मुगल घुड़सवार इस प्रकार नदी को नहीं लांघसके, क्योंकि-वह चेतकसा घोड़ा कहां से लाते ? इस कारण नदी के पार उतरने मे उनको कुछ देरलगी, परन्तु देर लगनेपर भी थोडे

ही समय में वह फिर प्रतापसिंह के समीप जापहुँचे, महाराना की समान उनके चेतक घोड़े का शरीर भी घायल होरहा था, सारा शरीर रुधिर की धारों से सराबोर होरहा था, अब वह पहिले की समान स्वामी को लेकर वेगके साथ न चलासका, दोनों मुगल सवार अवकाश पाय बड़ी शीघ्रता से घोड़ों को बढ़ाकर महाराना के बहुतही समीप आपहुँचे, और उन्होंने पीछे से महाराना के ऊपर प्रहार करने का विचार कियाही था कि–इतनेही में बड़े वेग के साथ घोड़े को दौड़ाकर शक्तसिंह तहां आपहुँचे और बन्दूक का एक फेर करके अपनी मातृभाषा में कहनेलगे कि–ओ नीले घोड़े के सवारो! शक्तसिंह का यह शब्द महाराना के कानों में पहुँचा। दारुण कष्ट के समय मातृभाषा के इस वाक्य ने महाराना के प्राणोंपर अमृतसा छिड़क दिया, परन्तु उस अमृत के छिड़काव के साथ २ ही और अधिक दारुणघृणा भी हुई, उन्होंने मुखफेर कर देखा कि–पीछे घोड़ेपर चढ़े हुए शक्तसिंह खड़े हैं, परन्तु यह क्या देखते ही, नेत्रों का पलक लगाते ही–शक्तसिंहने क्या? उन दोनों मुगलसवारों को तीखे तलवारसे तत्काल भूमिपर सुलादिया! क्यों? शक्तसिंह ने अचानक दोनों मुगल सवारों को क्यों मारगिराया? मुगलों का तरफदार होकर मुगलों के ही प्राण लिये इसका क्या कारण? यह दोनों मुगल सवारतो चुपके२ मेरे पीछे आकर मेरे प्राण लेना चाहते थे, फिर शक्तसिंहने उनको क्यों मारगिराया? मुझे तो इसका यह कारण प्रतीत होता है कि–शक्तसिंह अपने हाथ से मेरे प्राण लेकर चिरकाल की अहनी बदलालेने की प्रतिज्ञा का पालन करेगा? यह दोनों मुगल उसकी अपनेहाथ से मारनेकी प्रतिज्ञा में बाधा

डालतेथे, इसकारणही शक्तसिंह उन दोनों के प्राण लेकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये मेरे समीप को आरहाहै। न जाने बात क्या है ? । इस वृत्तान्त को लिखने में जितना समय लगा, इस के सहस्रवें भागसे भी कम समय में, प्रतापसिंह के मन में ऐसी अनेकों तरंगें उठ २ कर लीन होगई चिन्ता चाहे जो कुछ की परन्तु वह राजपूत थे, मृत्यु का भय उनको त्रिकाल में भी नहीं होसकता था, इस लिये वह चेलटक खडे होकर शक्तसिंह के समीप आने की प्रतीक्षा करने लगे। एकायकी, नजाने उनके मन में क्या बात आई, कि-अपने जीवन को बडा धिक्कार देनेलगे-हाय ! मैं पराजित और सर्वस्वहीन होकर कायर पुरुष की समान रणभूमि में प्राणों को बचाकर क्यों ले आया ? अब प्रतीत होता है कि-इन प्राणों को त्यागदेना ही अच्छा है। अच्छा तो, मैं आत्महत्या क्यों करूँ ? अभागे शक्तसिंह की चिरकाल की इच्छाको ही आज पूरा करूँगा। मनहीमन में ऐसा विचारकर महाराना ने अपनी तलवार हाथ में से फेंकदी। फिर शक्तसिंह के समीप आनेपर हृदय को थामकर उच्छसित कण्ठसे कहने लगे कि--आओ शक्त ! इस हृदय में तुम अपनी तीखी तलवार पार करदो। बहुत दिनों से तुम्हारी इच्छा थी कि--प्रतापसिंहकेरुधिर से अपने अतितप्त प्राणोंको शीतल करूँगा सो आओ आज यह सुन्दर समय, सुन्दर अवसर अच्छा सुयोग है, आओ, आओ, मेरी इस घृणित छातीपर अपनी तीखी तलवार को वेधदो। अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा करने से मुखमोडकर अपने प्राणोंको लियेहुये जो रणभूमि से लौट आया है,ऐसी मृत्यु ही प्रायश्चित्त है! विचार क्या रहा है ? चुपचाप खडा हुआ कातर नेत्रों से मेरे मुख की

ओर को क्या देखरहा है ? वह सूनसान वन का पहाडी-स्थान है, शिर पर आकाश है, और यहाँ क्या है? जिसको देखरहा है, आओ, आओ, शक्त ! इस व्यथित तापित और मर्माहत पुरुष की मुक्ति कर ! पश्चात्ताप करनेवाला शक्त प्रथम से ही जिस हृदय को लेकर बडे भाईके पास आया था, उस को पाठक जानते ही हैं, अतः महाराना के ऐसी बातें कहने पर शक्तसिंहके हृदयरूप समुद्रकी क्या दशा हुई होगी ? उस को पाठक महाशय जरा ध्यान देकर आपही विचारलें। शक्तसिंहके नेत्रों में टप टप आंसू टपकनेलगे, वह चुपचापही घोडेपर से उतर पडे, मुखसे कुछ न कहकर हाथ में की तलवार दूरको फेंकदी घुटने नमाकर हाथ जोडे और नेत्रों से बराबर आंसुओं की धार बहातेहुए महाराना का मुख देखनेलगे। अब महाराना सब व्यापार समझा और तत्काल घोडेपर से उतरकर धीरे २ शक्तसिंह के पास आये और हाथ पकडकर नेत्रों में से आंसू बहाते हुए छोटे भाई को छाती से लगालिया। यह सब अभिनय सूनसान जंगल में हुआ, विधाता के आशीर्वाद से दोनों भाइयों का फटाहुआ हृदय फिर मिलगया। शक्तसिंह महाराना की चरणधूलि लेकर रोतेर कहनेलगे कि–भाई ! मैंने कभी देवता को नहीं देखा था, यदि देखा है तो वह देवता आपही हैं, मैं अन्धा था, आज मेरी आंखें खुली हैं, आज मैंने आपको पहिचाना है, महाराना भी चुपचाप नीचे को मुख करे आंसू बहातेरहे। शक्तसिंह ने फिर कहा कि–भाई अपनी ओरको देखकर मुझ मूर्ख को, सकल अपराधों को क्षमा करते हुए शरण में लो, अब मुझ को आशीर्वाद दीजिये कि– मैं जीवन में, मरण में आपके ही चरणों के आश्रयसे रहसकूं,

आगे को कभी मेरी बुद्धि भ्रष्ट न हो। महाराना ने स्नेह में भर कर छोटे भाई के शिरपर हाथ रक्खा, शक्तसिंहने भी इससे कृतार्थ और धन्यमाना तथा फिर कहने लगे कि--भाई! आज के युद्ध में जय न मिलने के कारण आप अपने को धिक्कार क्यों देरहे हैं? जीवन को भार क्यों समझरहे हैं? आप की समान भाग्यवान् कौन है? जो पराजित होनेपर भी आपने देवता की समान सन्मान पाया है शत्रु लोग सरसों मुख से आपकी प्रशंसा कर रहे हैं, अधिक क्या कहूँ, रणभूमि में आप की अनुपम वीरता को देखकर मुझ समान नीच का हृदय भी बदलगया। भाई! आशीर्वाद दो, जिससे मैं भी आपकी समान वीर व्रत को ग्रहण करसकूँ। आपकी समान, अपने देशकी रक्षा के लिये आत्म बलिदान करसकूँ, नहीं तो मेरे महा-पाप का प्रायश्चित्त नहीं होसकता। आशारूपी वृक्ष की जड में जल का सेचन हुआ, महाराना गद्गदकंठ होकर कहने लगे कि-भाई! सत्य ही मेरा सौभाग्य है विधाता की मेरे ऊपर दया है, इसकारण ही भाई! तुमने आकर मुगल सवारों के गुप्त प्रहार से मेरी रक्षा करी है। अब तेरी बातों से मुझको प्राणों के रखने की कुछ इच्छाहुई है, अबमें अपने प्राणों को निरर्थक नहीं खोऊँगा, किन्तु जीवित रहकर अपने व्रत का उद्यापन करने के लिये फिरभी यथाशक्ति चेष्टा करूँगा। मुगलों के सामने माथा नहीं नमाऊंगा, फिरभी प्रारब्ध की परीक्षा करूँगा। इसप्रकार दोनों भ्राताओंमें बहुतसी बातेंहुई, परन्तु थोडी ही देर, क्योंकि-शक्तसिंहको फिरभी लौटकर मुगलों के लश्कर में पहुँचना था, नहीं तो सलीम के हृदय में शक्तसिंहके विषय में न जाने क्या २ सन्देह उठते। इससमय महाराना के उस प्यारे घोडे चेतकने प्राण छोड दिये, पशु होने

पर भी महाराना उससे बडा प्रेम करते थे, सम्पत्ति-विपत्ति दुर्गम सुगम-रण-वन, सर्वत्र ही इस चेतक से उनको विशेष सहायता थी, ऐसा सहायक को खोकर वीर प्रतापसिंह जी सत्य सत्य ही आँसुओं की वर्षा करने लगे। पाठक जानते ही हैं, चेतक रणभूमि में से बहुत ही घायल होकर आयाथा, इस समय उसके घावों में से रुधिर की धारें वेग के साथ निकलने के कारण उसने प्राण छोडदिये। मृत्यु के समय चेतक ने एक वार नेत्रो में जल भरकर अपने स्वामी की ओर को देखा था, एक विकट लंबी श्वास लेकर न जाने क्या व्यथा जनाई थी, वह जानता था कि-महाराना मुझ से सच्चा प्रेम करते हैं! हाय! वनका पशु भी सच्चे प्रेमका कृतघ्न होता है। इस घटनाको देख महाराना मनही मन में कहने लगे कि-दैव के प्रतिकूल होनेपर ऐसा ही होता है। आज के युद्ध में हार, रणभूमिसे मेरा लौटना, फिर मेरे जीवन के सहायक इस चेतकका मरण, हाविधातः! तुम्हारे मन में यह भी था? अबकी वार प्रतापसिंह चीखमार कर रोने लगे। शक्तसिंहने महाराना को बहुत कुछ समझा बुझाकर अपना घोडा दिया और उन मरे हुए मुगल सवारों में से एकके घोडे पर चढकर सलीम के पास जापहुंचे। महाराना चेतक से कितना प्रेम करते थे, इसवात को पाठक चेतक के स्मरण चिन्ह को देखकर ही समझसकते हैं, जिस स्थानपर चेतक ने प्राण छोडे तहाँ महाराना ने उसके स्मरण के लिये एक चौंतरा वनवादिया। इधर सलीम ने सब समाचार जानकर भी शक्तसिंह से कुछ नहीं कहा। तदनन्तर शक्तसिंह ने दिल्ली का आश्रय छोडदिया और भ्राताके सुख दुःख में सहायक होकर समय विताने लगे।

—०—

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

इतिहास के पढने वाले जानते होंगे कि–बादशाह अकबर ने बल से और छल से और चतुराई से अनेकों राजपूत राजाओं को अपने अधीन और वशीभूत करलियाथा, तथा किन्हीं २ को दिल्ली में नजरबन्द करके भी रक्खा था. उन्हीं में से एक बीकानेर के राजा पृथ्वीराज भी थे, अदृष्टवश पृथ्वीराज की बाहरी सब स्वाधीनता छिनगई थी, परन्तु उन की हृदय की स्वाधीनता में रत्तीभर भी कमी नहीं हुई थी, क्योंकि–उन्हों ने अपने जीवन में दुर्लभ कवित्व पाया था, सच्चा कवि या सहृदयपुरुष, ग्रहदशाकी प्रतिकूलता से नागपाश में फँसजाने पर भी मनकी स्वाधीनता, तेजस्विता और न्यायपरायणता को नहीं छोडते हैं । इस के सिवाय सरलता, सहृदयता, अकपट, गुण ग्राहकता और उदारता कवि के हृदय का भूषण हैं । बीकानेर के राजा पृथ्वीराज इन सब गुणों के अधिकारी थे । लोग उनकी उत्तम कविता से बहुत ही प्रसन्न होते थे । बादशाह अकबर ने इन वीर कविको चतुराई से बन्दी करके अपने दरबारियों में रक्खा था । यद्यपि इनको सबप्रकार राजसी भोगका सुख देने और उचित सन्मान करने में बादशाह किसीप्रकार की कमी नहीं करते थे परन्तु वन के स्वतन्त्र पक्षी को सोने के पिंजरे में बन्द करके चाहे जितना उत्तम भोजन देने से भी क्या वह प्रसन्न होता है ? पृथ्वीराज के मनोनुकूल स्त्री पुत्रादि सब परिवार था केवल अपने देशका हित का कोई कार्य करने की शक्ति नहीं थी । राजपूत होकर वीरकवि होकर स्वतन्त्रता न रहने से उन की समान दुःखी और कौन होसकता है ? बादशाह के बन्दी होनें पर उन को रातों निद्रा नहीं आती थी, पडेहुए

यही विचारते रहते थे कि मैं इस शरीरके भार को वृथा ही धारण करता हूँ, हाय ! पापी मुगलों ने मेवाड का सर्वस्व छीनलिया, परन्तु मैं उस मेवाड का निवासी होकर उनही मुगलों के अनुग्रहसे जीरहा हूँ, हाय ! स्वदेश की रक्षा में यथा शक्ति उद्योग करने की मेरी अभिलाषा मन की मन में ही रहगई। धन्य है उन प्रातःस्मरणीय पुण्ययशा महापुरुष को धन्य है महाराना प्रतापसिंह को आज वह ही देश के लिये हृदय चीरकर रुधिर देरहे हैं। हाय ! ऐसा शुभसमय पर मैं यदि उनका झंडा उठानेवाला सेवक वनकर भी यदि उन के पास खडा होसकता तो अपने जीवन को सफल समझता और मुझको इस हृदयविदारक चिन्ता से भीतर ही भीतर भस्म न होना पड़ता। ऐसे दुःखके समय में भी पृथ्वीराज एक विषय में वड़े भाग्यवान हैं, इस मानसिक दुःखमें भी उस भाग्यवश इनको कभी२ मुख उठाकर वात करनेका अवसर पडता है। ऐसे समय पर भी इनको ढाढस वँधानेवाली है इसकी स्त्री। इतिहास स्पष्ट कहरहा है कि पृथ्वीराज की धर्मपत्नी गुण और रूप में अनूपम थी। इस आर्यकुल की लक्ष्मी पतिव्रता रमणी का नाम था किरणमयी, और यह महाराना प्रतापसिंहके छोटे भाई शक्तसिंह की पुत्री थी। वास्तव में भारतवासियों की दृष्टि में यह सीता सावित्री की समान सन्मान पाने योग्य हुई, इस बात का परिचय पाठक महाशय आगे यथा समयपर पावेंगे। एकदिन पतिपत्नी में वातें होतेर किरणमयी ने वूझा कि--हां कल वादशाह के वुलालेने के कारण आप आधी ही बात कहकर चलेगये थे, वताओ तो सही हल्दीघाट के संग्राम में महाराना का पराजय होनेपर पिताजी ने क्या किया ? । पृथ्वीराजने कहा प्रिये वह

बडा शुभ समाचार है, महाराना की पराजय होने से मैं अ-वश्यही दुःखित हुआ हूँ, परन्तु तुम्हारे पिता के साथ उनका मेल होजाने का समाचार सुनकर मुझको हर्ष भी बहुत ही हुआ है, मालुम होता है इतने दिनों के बाद अब विधाता शि-शोदिया कुलकी रक्षा करेंगे, इतने दिनों में महाराना के व्रत के उद्यापन होने का मार्ग खुला इतना सुन किरणमयी कहने लगी कि अब मेरा भी मुख उजाला हुआ। नाथ! क्या कहूँ, जिसदिन मैंने सुनाथा कि पिताजी ताऊजी से वैमनस्य करके बदला लेने की इच्छासे मुगलों की शरण में आकर रहे हैं, उसदिन मेरे हृदय में वज्रकी सी चोट लगी थी। औ-रोंके सामने का तो कहना ही क्या आपके सामने भी मुख उठाकर बात करने में मुझे लज्जा लगती थी, कितने ही दि नोंतक तो आपके सोजाने पर भी मुझे निद्रा नहीं आती थी और मैं खिड़की की किवाडें खोलकर आकाश की ओर को देखती हुई चुपचाप परमेश्वरसे प्रार्थना करती थी और मेरे नेत्रों में से टप२ आँसू गिरते थे, फिर विवश हो आपके च-रणों में सोरहती थी, विधाता ने इतने दिनों में मेरी उस दीन पुकारको सुना पिताजी और ताऊजी में परस्पर मेल होगया यह मेवाड के लिये एक शुभ लक्षण है। पृथ्वीराजने उत्तर दिया कि सार यह है कि घर का विवाद ही सब अनर्थोंका मूल है, इस घरके विवादसे ही मेवाड और भारतवर्ष की यह दशा हुई है, राजपूतों की जो आज ऐसी दुर्दशा हुई है, इस का मूल भी गृहविवाद ही है। तुम्हारे पिता और महारा-ना का वैमनस्य मिटगया, इसकी किसी को भी आशा नहीं थी। सुना है बादशाह को यह समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ है।

सोलहवां परिच्छेद.

आज दिल्ली में बडाभारी उत्सव है। आज नौ रोजे का आनन्द दिन है, आज नवें दिन वालास्त्रियोंका मेला है, आज सतियों के सतीत्व की बिक्री खरीद का दिन है। यह दिन राजपूतों को मृत्यु से भी अधिक पीडा देनेवाला है। हाय! आज इसदिन का वृत्तान्त लिखकरभी लेखनी को कलङ्कित करना पडेगा। जगत् जिनका नाम ' दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा ' शब्दों में प्रसिद्ध है, जिन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनोंसे एकसमान श्रद्धा पाई, सत्य के अनुरोध से आज उन के कलंक की कालिमा को इस पुस्तक में चित्रित करनापडा. यह कलंक जबतक ऐतिहासिक संसार रहेगा कदापि दूर नहीं होसकता. अतएव हमभी उपेक्षा न करसके जिस प्रकार प्रकाश के समीप में छाया देकर चित्र को पूराकियाजाता है, तिसी प्रकार पवित्रात्मा प्रतापसिंहके चरित्र के साथ में राजराजेश्वर मुगल बादशाह अकबर के उस नौरोज की कहानी का वर्णन करके हम इस ऐतिहासिक चित्र की पूर्ति करेंगे, आशा है इस सत्य घटना को पढ़कर बादशाह अकबर के भक्त पाठक लेखक को अपराधी न समझेंगे। अबुलफ़जल साहब ने ' नौरोजा ' शब्द का अर्थ बदलकर अकबर के इस कलंकको धोने की चेष्टा की है, परन्तु असत्य के परदे से सत्य को ढकने की चेष्टा में उन्होंने सत्य को सर्वथा तिलाञ्जलि देदी है! अबुलफ़जल साहब ने कहा है कि–हर महीने के प्रधान उत्सव के अनन्तर नवेदिन यह ' नौरोजा ' प्रारम्भ होता था, उस दिन सब मुसलमान खुशी मनाते थे, और बादशाह उस दिन स्त्रियों का मेला लगवाते थे, उसका प्रयोजन यह था

कि-राज्य के मुसलमान सौदागरों की स्त्रियें इकट्ठी हों और बेगमें उनसे अपनी २ इच्छानुसार वस्तुएँ खरीदें, और उस मेले में बादशाह जो छुपेहुए सैर करते, उसका यह मतलब था कि-वह अपने राज्य के विषय में पूरी २ जानकारी पाना चाहते थे। अर्थात् राज्य की असली हालत, प्रजा के मनका का भाव, राज्य के कर्मचारियों के काम का ढंग और सौदागरी चीजों के मूल्य उत्पत्ति आदिका हाल जानना ही उनका प्रयोजन था, और किसी खोटे संकल्प को लेकर वह ऐसा नहीं करते थे। अबुलफजल साहब इतिहास लिखने में चाहे जितने चतुर हों परन्तु इस विषय में हम उनकी हां में हां नहीं मिलावेंगे, वह मुसलमान थे,बादशाह के कृपापात्र थे, बादशाहके दरबार में शाही शायर माने जाते थे, उन की यह चतुराई उनके ही योग्य है, हम उन की उनके इस मन्तव्य में सहमत नहीं होसकते। इसके सिवाय अबुलफजल साहब की इबारत से भी बादशाह की दुर्नीति ही टपकती है वह पुरुष होकर गुप्तवेश से स्त्रियों में क्यों जाते थे। उस स्त्रियों के मेले में केवल उनके ही खानदान की स्त्रियें नहीं आतीथीं, किन्तु अनेकों प्रतिष्ठित मुसलमानों की स्त्रियें तथा अकबरके वशीभूत अनेकों प्रतिष्ठित राजपूतों की स्त्रियें भी जातीथीं, हा! अकबर बादशाह होनेपर भी कपट का वेश बना चोर की समान उस मेले में जाना तुमको किसने सिखाया? यदि तुम चाहते तो और अनेकों उपायों से अपने मनोरथ को सिद्ध कर सकते थे, स्त्रियों के मेला तुम्हारे मनोरथ सिद्ध करने का कुछ अच्छा उपाय नहीं था। वास्तव में बादशाह कामदेव के दास बनेहुए थे, परन्तु अपनी बुद्धिमानी से एक मेले

का बहाना करके मूर्खों की आखों मे धूलडालतेहुए प्रतिष्ठा के साथ अपने मनोरथ को पूरा करते थे। परन्तु बहुत दिनों से दुर्बल हिरनियों का शिकार करते २ वह आज सिंहनी के मुख में पड़गये हैं, पाप का प्रायश्चित्तही यह है, उसी बात को कहने के लिये हमने इतनी भूमिका बांधीहै।

आज एक बड़ेभारी मैदानरूप की दुकानें और सुन्दरता का मेला लगाहुआ है चारों ओर युवति, प्रौढ़ा, किशोरी और बालिका फिर रहीहैं, इस स्त्री जगत् में आकर रक्त मांस के शरीरधारी बादशाह अवश्यही अपने निर्विकारचित्त से राज्य की दशा देखेंगे ?। ओहो ! जहां मुनियों का मन टलजाय, जिस को देखकर एकबार परमहंस यतियों का भी चित्त चलायमान होसकता है, और जितेन्द्रिय साधु भी अपनी मर्यादासे गिरनेलगें तो आश्चर्य नहीं युवा--सुख--सरस--माधुर्यमयी मूर्त्तियों को देखते २ नीरस राजनीति का अभ्यास होगा ? अच्छा भाई हम हारे, तुमही जीतेसही, परन्तु असली बात तो तुम को सुननी ही पड़ेगी। आज अलीशान मैदान में मेला लगाहुआ है, मेलेमें जैसी रूपवती सुन्दरी आई हैं उनका वर्णन करने की हममें शक्ति नहीं है, सुन्दरी अपने सामने रक्खेहुए दर्पण में मुख देखकर ही उसका अनुमान करलें और पुरुष अपनी रूपवती धर्म पत्नियों का ध्यान करके मेलेके सौन्दर्य संसार का अनुमान करलें। और भागसे उस मोहनमेले की मोहिनी मूर्त्तियों के रूपको वर्णन करने की शक्ति लेखकमें नहीं है। नीले पीले लाल स्वेत हरे आदि वर्णों के परमोत्तम बहुमूल्य वस्त्रों से शरीरों को ढके, चरणों के आभूषणों की झङ्कार करतीं, कण्ठ में गजमुक्ताओं के हार पहिने, अधर

पर हास्य और हृदय में स्वप्नको लिये, मन्द २ गति से अनेकों प्रतिष्ठित मुसलमान और राजपूतों के घर की लक्ष्मियें जहाँ तहाँ फिर रही हैं, मानों शरीरों का लावण्य सूक्ष्म वस्त्रों में को निकला पड़ता है। उनके वस्त्रोंमें से अतर की सुगन्धनिकलकर चारों दिशाओं को महकरही है, उनके ताम्बूल से रंगेहुए अधर, सम्हालेहुए सुगन्धित केशपाश, उन्नत वक्षःस्थल, चंचल कटाक्ष और मुखोंकी सुन्दर शोभा, मानो नौरोजारूप सरोवर में रंगविरंगे कमल खिलरहे हैं, ऐसे सरोवर के सामने आकर कपट वेश मुगल बादशाह आज निर्विकार चित्तसे राज्य की गतिविधि देखेंगे ?। और उधर देखो वह असीम रूपवती अमीरजादी, वजीरजादी, वेगमें, वेगमों की लड़कियें, कोकिल कण्ठसे आमोद की बातें और विनोद का हास्य करते २ एक दूसरी के ऊपर गिरती हुई पिचकारियों में गुलाब भरकर परस्पर सराबोर कररही हैं, चारों ओर विलास की तरंगें उठरही हैं, सत्य २ ही आज रूपका बाजार लगाहुआ है, इसी बाजार में बादशाह राजनैतिक बातों का निश्चय करने आवेंगे ?। यह मेलेका मैदान चारों ओर ऊँचे परकोटे से घिराहुआ है, एक ओर को ऊपर शामियानातना है और नीचे मखमली गलीचों का फरश होरहा है, चारों ओर अनेकों प्रकार के सुगन्धित पुष्पों के गुलदस्ते और वन्दनवारें लगरही हैं, बीच २ में बादशाह और वेगमों के चित्र लगेहुए हैं, इधर उधर बड़े बड़े आईने लगे हैं। बीच २ में सुन्दरियें उन अमल धवल दर्पणों में मुख देखकर अपने २ रूपका घमंड कररहीं हैं, कहीं गद्दियें कहीं कुरसियें, कहीं संगमरमर की चौकियें और कहीं स्त्रियों के विश्राम के लिये दो एक पलँग भी बिछेहुए हैं, कहीं फूल,

दान, गुलाबदान, अतरदान और कहीं बिल्लौर के स्वच्छ गिलासों मे मादक अर्क रक्खाहुआ है, एक जगह चाँदी के थाल में नाना प्रकार के अति स्वादु फल मूल और मिष्टान्न रक्खे हैं, सुवर्ण की झारियों मे शीतल जल भरा हुआ है, कहीं सुन्दरता के साथ नाच गान होरहा है। स्त्रियें ही सुनने वाली और स्त्रियें ही गाने बजानेवाली हैं, इस सुन्दरता के बाजार में यदि पुरुष है तो केवल एक बादशाह ही हैं। क्या इस आनन्द के अवसर में उनका यहाँ आना प्रजाओंके मन वृत्तान्त जानने के लिये होसकता है ? आज मुसलमान रमणी और राजपूत रमणियों के मेल की यहां अपूर्व छटा है। सब अपने २ पति के रूप, गुण, चतुराई, शूरता, वीरता और धनसम्पत्ति की बातें कररही हैं, स्त्रियों का परस्पर आनन्द रंग होते २ नौरोजारूप--रूपकी नदी उमडउठी इसही नदी के किनारे खडा करके अबुलफजल साहब बादशाह से राज नीति की चिन्ता कराने की शेखी मारते हैं !। चारों ओर दुकानों की लंगारों मे हिन्दू मुसलमान सौदागरों की स्त्रियें अनेकों बहुमूल्य वस्तुओं को सजाए हुए बेचरही हैं। स्त्रियें ही सौदागर हैं और स्त्रियें ही गाहक हैं।इसी स्त्रियों के झुंड में मुगलकुल तिलक अकबर बादशाह छुपे हुए वेषमें राज्य हानि लाभका विचार कररहे हैं ?। नहीं नहीं हाय ! न जाने किस दुष्टात्मा की प्रेरणा से आज ' दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा ' कहलानेवाले बादशाह अपने नाम में अमिट कलौंच लगारहे हैं। गला खोलकर रूप--सुधाको पीरहे हैं, कामकलुषित शरीर में पीडित होरहे हैं, उस सुन्दरता के बाजार नौरोजे में किसीको चित्तपर चढाकर उसके आनेकी बाट देखरहे हैं। हाय ! वह लोकलाज भूता सुन्दरी कौन है?

वह सुन्दरता की खान शोभामयी कौन है। वह मोहिनी मूर्ति कौन है? वह वराननापरस्त्रीकौन है। वह हिन्दू है या मुसलमान। सती है या कलङ्किनी? पुण्य प्रतिमा है या पिशाचिनी वह चाहे जो कोई हो, आज उसकी पवित्र कहानी को लिख कर इस लेखनी को कृतार्थ करेंगे।

सत्तरहवां परिच्छेद.

मेले के शामियाने के नीचे,हिन्दू मुसलमान प्रायः सवही स्त्रियें यथेच्छ आनन्द विलास कररहीहैं केवल एकही रमणी कुछ खिन्नभाव से गंभीर होकर एक आसनपर बैठी है, उस के वेष और आभूषणों का अधिक ठाठ नहीं है तो भी वह सब से अधिक सुन्दरी प्रतीति होती है, उसके समीप कोई नहीं आता है तथापि वह अपने मन में एक साम्राज्ञी की समान गम्भीर चिन्ता में निमग्न है। वास्तव में यह रमणी रत्न सब से अलग बैठीहुई अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर रही है। बाजार की भीड़भाड़ कुछ कम होनेपर वादशाहकी एक कन्या आई और वह उस रमणीरत्न के पास सटीहुई बैठकर कहनेलगी, वहिन! आज इस आनन्द के दिन तू ऐसी मलिनमुखसी क्यों बैठी है? इतना सुनतेही सुन्दरी मानों चौंक उठी और लज्जितसी होकर कहनेलगी हां मैं यहां बैठी हुई ही मेले की सब शोभा देखरही हूं। लड़की ने कहा—नहीं मैं तो वरावर तुझको ऐसे ही चिन्ता में बैठे देखाहै, मुझे बता तो सही तू इसप्रकार क्यों बैठीहै। रमणी ने कहा—शाहजादी के ऐसा बूझने की बहुत एहसान मानतीहूँ, नहीं तोमैं बड़ी प्रसन्न बैठी हूँ, ऐसा कहते में सुंदरी के मुखपर कुछ हँसी की रेखा दिखाई दी परन्तु साथही नेत्रों

के कोयों में एक बिन्दु जल भी आगया। शाहजादी ने कहा नहीं बहिन तैने बात को छुपा लिया, अब कहे तो मैं ही बतादूं, जिसकी तेरे दिलपर चोट है ? रमणी ने हँसकर कहा-क्या ?, शाहजादीने कहा—हिन्दू मुसलानों की स्त्रियें एकसाथ मिलझुलकर जो आमोद प्रमोद करती हैं यह तुझे पसन्द नहीं है। इसबारभी रमणीने कुछ मुसकुराकर उत्तर दिया कि-भला मेरा यह विचार कैसे होसकता है? राजपूतोंकी स्त्रियों को आजकल तुम अपनी सखी और कुटुम्ब की गिनती हो! शाहजादीने कहा-तू मुखसे ऐसा कहती है परन्तु तेरे मनमें क्या यह बात है? कदापि नहीं है, देख-बादशाह की लडकी होकर मैं भी तो कुछ बुद्धि रखती हूँ, इस बार रमणीने कुछ उत्तर न देकर एक लंबा सांस लिया शाहजादी कहनेलगी कि-तू पृथ्वीराज की स्त्री है, साधारण स्त्रियों की अपेक्षा तेरे विचार ऊँचेहोंगे इसमें सन्देह नहीं है, राजपूतों की स्त्रियें हमारे साथ इसप्रकार मिलती हैं इससे तुझे कष्ट-होगा ?। रमणीने कहा-ऐसा कैसे होसकता है!, शाहजादी ने कहा-नहीं, बहिन अब छुपाती क्यों है ? तेरे यह लम्बे सांस और नेत्रों की दृष्टि मनके हालको कहरहीहै,परन्तु इस परभी मैं कहती हूँ, कि-अब तुमको अपने चित्तों में ऐसा अभिमान करना ठीक नहीं है, अपनी हालत को विचारकर देखो!। रमणी इसबार उठकर खडी होगई और मनमें विचारा कि मैं अब इसको कुछ उत्तर न देकर कहीं और जा-बैठूँगी, परन्तु अभिमान के वेगको रोक नहीं सकी, गरदन घुमाकर आँखें निकालकर दृढता के साथ कहनेलगी -अपनी हालत को क्या विचारूँ ?। शाहजादीने कहा--नहीं और कुछ नहीं, तुम्हारे पति इस समय हमारे पिताके वश में हैं,

इस बातका भी ध्यान रक्खो ! । रग २ में अतिवेग से रु-
धिरका प्रवाह जाकर उस तेजस्विनी हिन्दू रमणी का मुख
लाल २ होगया, नेत्रों की टकटकी बंधगई, मानो शरीर में
एक साथ आगीसी लगगई। समीप ही परदे की आडमें एक
कामोन्मत्त पुरुष, उस शोभाको देखकर मोहित होगया । भा-
ग्यवश इस मर्मपीडित रमणी की दृष्टिभी उस कामोन्मत्त नीच
पुरुष की ओर को जापडी, उस पापमूर्त्ति को देखते ही इस
का हृदय कांपनेलगा । कुछ चुप होकर रमणी धीर गंभीर-
भावसे कहनेलगी कि शाहजादी ! सदा सबकी एकसी हा-
लत नहीं रहती है, जो आज राजा है वह कलको मार्गका
फकीर होसकता है, यह संसार की रीति है, हालतका मिलान
करके किसी के हृदय में चोट पहुँचाना, बादशाह की पुत्रीके
योग्य नहीं है । शाहजादी ने उत्तर दिया कि बादशाह की
पुत्री के भले बुरे की नसीहत करना वशीभूत काफिर की स्त्री
के मुख से अच्छा नहीं मालूम होता । तुझे मालूम नहीं है
कि-हमारे बाबाजान ने दयालु शरीर और उदार मन के
कारण तेरे विश्वासघाती पिता के घोर अपराध को क्षमा
करदिया है ! गर्व में भरी, सौभाग्य के मद से उन्मत्त बा-
दशाह की पुत्री, इसप्रकार अनुचितरूपसे उस रमणीरत्न
हृदय में चोट लगाकर तहां से चलीगई और दूसरी कुरसी
पर बैठकर अपनी बांदियों के साथ , उस सहिष्णुमूर्तिको
अधिक जलाने के लिये उसके रूपके विषयमें अनुचित बातें
करनेलगी, एकबात इस रमणी किरणमयी के कानों में भी
पडी उसका सार यह था कि-जो हमारी बांदियों की स-
मान है उसको खुदाने इतना रूप क्यों दिया, और ऐसा ही
किया था तो इस को बादशाहके हिस्से में क्यों नहीं दिया?

जैसे कटेरे में बन्द शेरनी अपने मन में घुटती है तैसेही किरणमयी मन ही मन में घुटनेलगी, परन्तु हाय ! कोई उपाय नहीं है, दैवप्रतिकूल है, किसी से कुछ न कह सुनकर अपनी बांदी को शीघ्रही पालकी लाने के लिये भेजदिया।

अठारहवाँ परिच्छेद।

क्या इस राजपूतों की दुर्दशा को देखने के लिये किरणमयी इच्छा करके आई थी ? नहीं वह अपनी इच्छासे नहीं आई. किन्तु वह शत्रु के ही आश्रय से रहती थी यदि वह इस मेले में नहीं आती तो स्वामी को बादशाह से जवाबदेही करनी पडती, यह विचारकर अपनी इच्छा न होनेपर भी वह इस पापस्थान में आई थी। इच्छासे न आने के कारण ही वस्त्र आभूषण आदि के द्वारा शृङ्गार करके नहीं आई थी और उस मेले में संमिलित भी नहीं हुई थी। पृथ्वीराज को भी अनेकों प्रकारका ऊंचनीच विचारकर इस मेले में स्त्री को भेजना पडा था। अबतक जो कुछ अपमान हुआ वह तो विशेष क्षोभ का कारण नहीं हुआ, परन्तु इससे आगे जो कुछ हुआ उसको स्मरण करनेमात्र से भी शरीर कांप उठता है। किरणमयी की वह टहलनी तो पालकी लेने के लिये बाहर गई, राजपूत और मुगलों की स्त्रियें एकत्र करके सब ही अपनी २ डोलियों में बैठकर चलीगईं, मध्यान्हकाल होगया परन्तु वह टहलनी अभीतक पालकी लिवाकर नहीं आई, फिर साधारण स्त्रियें भी मेले के बाहर चलीगईं, सौदागरों की स्त्रियें भी अपनी२ दुकानें समेट करके अपने २ घरों को जानेलगीं और सायंकाल का समय हो आया तब तो किरणमयी को बडी चिन्ता हुई, छाती धडकनेलगी, अ-

पमान, अभिमान, क्रोध और अनेकों बातों का विचार आ-
नेके कारण किरणमयी के नेत्रों से आंसू गिरनेलगे, वह पृ-
थ्वीराज को याद करके मन ही मन में कहनेलगी—नाथ !
आज मेरे प्राण क्यों काँपेजाते हैं ? क्या आपका कोई अ-
पराध किया है ? नहीं ऐसा तो हुआ नहीं, यह दाहिना अंग
थर थर क्यों कांपाजाता है ? नाथ ! तुम ही मेरे जीवन के
आश्रय हो, न जाने कौन विपत्ति आनेवाली है, आपके च-
रणों का स्मरण करके उससे निस्तारा पासकूंगी । मेरी टह-
लनी अभीतक पालकी लेकर नहीं आइ ! न जाने मेरी पा-
लकी कहां गई ? मैया भगवती ! आज तूही मेरे मुख की
लज्जा रक्खेगी । इतने ही में समीप में को एक शस्त्र बेचने
वाली स्त्री आई और कहनेलगी कि बेटी ! सब चलीगई
तू अभीतक यहां ही क्यों बैठी है ? किरणमयी ने कहा मेरी
पालकी अभीतक नहीं आई है, तेरे हाथ में वह क्या है ?
बुढिया ने कहा बेटी ! यह ८ । १० छुरियें हैं, मैंने विचारा
था कि नौरोजे के मेले में अनेकों राजपूतों की स्त्रियें आवें-
गी और मेरी यह थोड़ीसी छुरियें सब विकजायँगी , सुना
था कि राजपूत महिलाएं अपने पास छुरियें रखती हैं परन्तु
बेटी ! अब पहिले से दिन नहीं रहे, देख मेरी एक भी छुरी
नहीं विकी, बेटा ! तेरा रूप तो भगवती की समान है , तू
तो मुझ को अपनी पुत्रीसी मियलगती है ? मैया ! समय सब
कुछ कराता है, अच्छा ला तेरी छुरियें नहीं विकीं तो मैं एक
खरीदे लेती हूँ, मुझे एक अच्छीसी छुरी छांटकर दे, बुढिया
ने कहा बेटी ! यह सबही अच्छी हैं , तेरा जी चाहे वहसी
लेले, एकबार प्रहार करने से ही एक पूरे आदमी का काम
तमाम होसकता है, तो यह कीमत ले, मैंने एक लेली , कि-

रणमयी से एक मोहर पाकर छुरी बेचनेवाली बुढ़िया बड़े अचंभे में होकर कहनेलगी कि-बेटी ! यह तो एक मोहर है! इस की तो बीस छुरी आती हैं , तो क्या उ- उन्नीस छुरी और लाऊं?,किरणमयीने उत्तरदिया कि-नहीं मैया ! मुझको एक ही छुरी चाहिये और यह मोहर मैंने तुझ को खाने के लिये दी है । फिर किरणमयी मन में कहने लगी कि-ओहो ! इस दुखिया बुढ़ियाने आज मेरी आंखें खोल दीं, राजपूत रमणी होकर आज मैं अपने साथ कोई हथियार क्या एक कटार भी नहीं लाई ? । बुढ़ियाने किरणमयी से कहा- बेटी ! तू सत्य ही अन्नपूर्णा भगवती का रूप है, नारायण तुझको धन पुत्र से सुखी करै । छुरी बेचने वाली प्रणामकरके हजार मुख से आशीर्वाद देतीहुई चलीगई और सामने से पालकी आतीहुई देखकर लौट आई और कहने लगी कि- ले बेटी ! पालकी आगई।किरणमयी ने देखकर कहाहाँ पाल की तो आगई, परन्तु टहलनीका पता नहीं है, न जाने क्या बात है?इतने ही में पालकी उठाने वालोंने कहा कि-पालकी आगई और टहलनी बाहर खड़ी है, अब यहाँ बाहर से किसी को भी आने की आज्ञा नहीं है, हम ही बादशाहकी आज्ञा पाकर आसके हैं । आकाश पाताल विचारते २ किरणमयी ने पालकी में बैठकर द्वार बन्द करलिया । पाठक समझगये होंगे कि-यह चालाकी किसकी है ? । किरणमयी पालकी में बैठकर अनेकों विचार करते २ मनही मन में कहने लगी कि-क्याभय है ? जब भगवतीने अभावनीयरूप से आकर मुझे अस्त्र दिया है तो क्या अब किसी का भय करना चाहिये अस्त्र पास होते हुए राजपूत रमणी को किसका भय ? मैया सर्व मंगले ! प्रतीत होता है आज तूही छुरी बेचने वाली का

रूपधरकर मुझे दर्शन देने को आई थी ! हाय में वडी अभागिनी हूं जो इन चमडे की आंखों से तुमको नहीं पहिचानसकी । नेत्रों को मूंदकर इससमयदेखरहीहूँ कि–इससमय मेरे हृदय को प्रकाशित करके तू विराजरही है । हे दयामयि ! हे परमेश्वरि ! हे विपददलनि ! आज ऐसी कृपा कर,कि–मैंसब विपत्तियों से पार पाजाऊं ! वास्तव में सती किरणमयी की इसप्रार्थनाको भगवती ने सुना । कहार पालकी को लेकर वडी शीघ्रता मे चलने लगे. कुछ देर में एक मुगल सिपाही की आज्ञानुसार आम सडक को छोडकर एक छोटीसी गली में को चलपडे, चलते २ एक सुरंग कैसा मार्ग आया, किरणमयी पालकी का द्वार थोडा सा खोलकर देखने लगी और मन में वहुत डरी, फिर पालकी ढालू जगह में को चली और कहारों की चाल धीमी पडगई । इसवातको जानकर भी किरणमयी ने विचारा कि–इससमय चिल्लाना या रोना निरर्थक है । पैनी छुरी को मजबूती के साथ कमर में कस लिया, मन में हिम्मत वांधी, इससमय किरणमयी के कपोलोंपर पसीने की स्वेत बूंदें दिखाई देने लगीं । किरणमयी विचारने लगी कि–क्या पेट में कटार मारकर सबझगडा खोदूं ? फिर विचारा कि–सचे हिन्दू को आत्महत्या करने का अधिकार नहीं है, ऐसा करने से स्वामीको मेरे चरित्र में न जाने क्या २ सन्देह होंगे ? अथवा मेरे वियोग से जाने अपने प्राणों को भी रखसकेंगे या नहीं ? इसकारण में आत्महत्या नहीं करूँगी । और मृत्यु तो सन्मुख दीखही रही है, फिर यह भी तो देखलूं परिणाम क्या होता है ? । फिर विचारा कि–कहीं बादशाह की बेटी तो और भी अधिक अपमान करने के लिये ऐसा प्रपंच नहीं रचरही है ? कहीं मुझे जवरदस्ती य-

नन के हाथका भोजनतो नहीं करावेगी ? ऐसे विचारते २ किरणमयी का माथा घूमनेलगा और आँखों के सामने अन्धेरा दिखाई देनेलगा। फिर ढाढस बाँधकर विचारनेलगी कि-मैं वृथा सन्देह कररही हूँ! ऐसा विचारने मेंभी पाप है, क्योंकि पाप से मेरा सर्वनाश होगा ? माता जगज्जननी मेरे हृदय में विराजरही है, मैया! भयभीत पुत्रीको अभयदान दो! और चाहे जो कुछ हो मुझे सन्देह करनेकी क्या आवश्यकता है ? हाथ में हीरेजड़ी अंगूठी और कमर में कटार लगीहुई है, क्या इतनी सामग्री पासहोने परभी राजपूतरमणी अपने अमूल्य धन सतीत्व की रक्षा नहीं करसकती ? पालकी उठानेवाले चलते २ एक द्वारपर आये और पालकी को कंधेपर से उतारा, उस स्थान के चारों ओर ऊंचा परकोटा बनाहुआ था, किधरही कोई आ जा नहीं सकता था, इस समय कुछ क्रोध में भरकर किरणमयीने पूछा-मुझे यहाँ कहाँ लेआये, बहुत शीघ्र पालकी मेरे घरको लेचलो। पालकी के साथ के जमादारने कहा-माई! इस घरमें जाइये, यहाँ आपके स्वामी हैं, वह आपको लिवाजायँगे, उनकी आज्ञा से ही हमें पालकी यहाँ लाये हैं। निरुपाय किरणमयी उस समय ढाढस बाँधकर ज्योंही उस द्वारमें को गई त्योंही एक साथ बाहर से द्वार बंदहोगया। नजाने कौन जंजीर जकड़कर शीघ्रही चलागया। अब किरणमयीने समझा कि-मुझेधोका देकर इस दुर्गम स्थान में लायागया है, स्थान में चारोंओर अन्धकार था केवल दीवार में दो ओर ऊँचेपर को दो झरोखे थे। परन्तु सायंकाल होने के कारण इस समय झरोखों में कोभी उजाला नहीं आता है। किरणमयी जिसद्वार में को आई थी पहिले उसको खोलने और तोड़ने के लिये बहुत

कुछ यत्न किया, परन्तु इससे क्या होना था, दो चार धूँधाँ शब्द होकर रहगया। तब राजपूत रमणीने बड़े साहस के साथ ढाढस बाँधा और अनन्य चित्त होकर भगवती का ध्यान करके प्रार्थना करनेलगी और अन्त में कम्पित कण्ठ से कहउठी कि–अच्छा अब तेरेही ऊपर हूँ, चाहे सो कर परन्तु न जाने किसने भर्रातेहुए स्वर में कहा कि–सुन्दरी! क्या इच्छा है? यह शब्द उस बंदघर में गूंजगया मानो दीवार २ और आले २ में से यही ध्वनि निकलरही थी, यह शब्द कानमें पड़ते ही किरणमयी के शरीर में सन्नाटा छागया, तथापि किरणमयीने कुछ भय नहीं माना किन्तु दूने साहस के साथ उत्तर दिया कि–जो दुष्ट खोटी इच्छा से इस घरमें घुसा है उसके मस्तकपर वज्रपड़े। सती आँखें फाड़कर टकटकी बाँधे देखती रही। उसके नेत्रों में से चिनगारियेंसी निकलने लगीं और कोमल शरीर बड़ा कठिन होगया, फिर शीघ्रता के साथ और समीप आकर किसी ने कहा–सुन्दरी ऐसा न कहो, यह मस्तक तो तुम्हारी कोमल छातीपर स्थित होकर स्वर्गसुख का अनुभव करेगा, उसी को चूर्ण विचूर्ण होने को कहती हो? किरणमयीने और भी दृढता के साथ उत्तर दिया कि–दुःखी की प्रार्थना को देवता कभी निष्फल नहीं करते हैं, पुरुषने कहा–कौन दुःखिनी, तूतो मेरी प्राणेश्वरी है! सतीने उत्तर दिया-अरे पिशाच! मैं तेरे प्राणलेनेवाली साक्षात् यमराज हूँ, उसी समय उस पहिचान में न आनेवाले पुरुषने सीटी बजाकर न जाने क्या संकेत किया कि–उसी समय किसी ने छत्तमें को लालटेन जलाकर सारे स्थान को प्रकाशमय करदिया, उस प्रकाश में अनुपम सुन्दरी किरणमयी को देखकर वह कामातुर अ-

भागा पागलसा होगया, इस मूर्त्तिको ही दुष्टने एकबार नौ-रोजे के मेले में परदे के भीतर छुपे २ देखा था। सतीका हृदय एकबार फिर काँपउठा और चिन्ता के समुद्र में गोते खानेलगी, इस समय उस कामातुर मूर्खने हाथ जोड़कर मौन भावसे ही प्रार्थना की, सतीके मुखकी ओर को देखकर क्या उसको कुछ कहनेका साहस होसकता था? किरणमयी वज्र की समान कठोर स्वर में गरजकर कहनेलगी- दूर हो, नरक के कीड़े दूर हो! तब तो पशुकी समान कामोन्मत्त हुआ वह पुरुष घुटने नवाकर कहनेलगा कि-सुन्दरी! मुझ को अब अधिक कष्ट न दो, मैं तुम्हारे रूपपर मोहित होगया हूँ, तुम्हारे रूप की लपट से मेरा भीतर बाहर से सारा शरीर जलाजाता है, अब प्राणजाया ही चाहतेहैं, रक्षाकरो प्यारी! प्रेमरूप जल देकर इस पिलासे के प्राणबचाओ, इस बार किरणमयी और भी चौंककर बोलउठी कि-तो क्या सत्य यह वही है ऐं?, पुरुष ने कहा-सुनयने! आज दिल्ली का बादशाह तेरेचरणों में लोटरहा है, क्या यही देखकर तू अचंभे में पड़ी है? मनुष्य तो सबही एक सामग्री से रचेगये हैं। किरणमयी चौंककर राम राम कहती हुई कानों में अंगुली दिये कुछ पीछेको हटतीहुई कहनेलगी कि--हरे! हरे! और क्या तूही दिल्ली का बादशाह है? तूही भारतवर्ष का स्वामी होरहा है? तूही अकबर है? तेरा यह काम?। बादशाहने उत्तर दिया कि--स्त्री का सुरूप देखकर देवताओं केभी पैर डगमगाने लगते हैं, मेरी तो गिनती ही क्या है?। सतीने कहा--क्या नौरोजेका मेला इसी लिये है?। बादशाहने उत्तर दिया--हाँ सत्य कहता हूँ प्रधानतः इसी लिये है। सतीने कहा कितने दिनो से इस पाप की कीच में डूबरहा है?। बादशाह

ने उत्तर दिया—बहुत दिनों से, परस्त्रियों के आस्वाद का मैं बड़ा पक्षपाती हूँ। स्त्रियों के मेले में आज तुझको अधिक रूपवती और मनोहारिणी देखकर धोखा देकर यहां लाया हूँ। लोकलज्जा के कारण यह गुप्तस्थान इसीलिये बनवाया है, सती ने कहा लोगों की आंखों में धूल डालकर भी तू उस घट २ वासी परमेश्वर की आंखों में कैसे धूल डालेगा ? बादशाह ने कहा प्यारी ! मैं चित्त से कुछ नहीं मानता हूँ, केवल मूर्खों में अपना सन्मान बना रखने के लिये ही धर्म का भेद करता हूँ। सतीने कहा अरे मूर्ख ! तेरे पापसे इस मुगलों की बादशाहत नाश होजायगी। बादशाह ने कहा मैं जीता हूँ, तो बादशाहत को और भी दृढ करूँगा, सती ने कहा-पापी का राज्य किसीप्रकार भी चिरकाल नहीं रहसकता। बादशाहने उत्तर दिया कि-मैंने हिन्दू मुसलमानों को प्रायः एक करडाला है। सती ने कहा—सर्वथा मिथ्या कहता है, सच्चे हिन्दुओं के हृदयपर तेरी कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं है। बादशाह ने कहा-नीरस राजनीति चाहे भाड में जाय, परन्तु सुन्दरी अब मेरी मनःकामनाको पूरी कर, तुझ को पाकर फिर मैं अपने जीवन में किसी की भी चाहना नहीं करूँगा। देख मेरा सब शरीर जर २ होरहा है। सती ने कहा दिल्लीपति ! होश में हो, अब ऐसी खोटी बात मुख से बाहर न निकालना, मुझे शीघ्रही मेरे स्वामी के पास पहुँचा दे। बादशाह ने कहा-प्रेममयी! प्रेमिकाओं की तो यह रीति नहीं है, उनका धर्म तो प्रेम के भूखे शरणागत की कामना का पूरा करना है प्यारी ! तेरा यह क्रोध से तमतमाताहुआ मुख भी अपूर्व शोभा देरहा है। सुन्दरी ! अब धीरज रखने की शक्ति नहीं है, देख आज दिल्ली का बा-

दशाह तेरे चरणों में , राज्य, राजमुकुट, सिंहासन, प्रतिष्ठा और अधिक क्या अपनाजीवनतक समर्पण कररहाहूँ,अपनी भी छातीपर इसतापित जनको स्थानदे,मैंएकवार इसअधरसुधा को पीकर अपना जीवन सफल करूँ. मेरे इस गुप्त प्रेम को कोई नहीं जानसकेगा । काँपते हुए स्वरमें में ऐसा कहते २ वादशाह दोनों भुजाओं को फैलाकर उससतीका आलिंगन करने को उद्यतहुए, यह देख क्रोध में भरी शेरनीकी समान किरणमयी गरजकर कहने लगी कि अरे दुष्ट मुगल ! यदि और एक चरणभी आगे बढ़ा तो प्राणों से हाथ धोबैठेगा, अबभी अपने पद, हुकूमत और सन्मानकी ओर दृष्टि दे ! ओहो ! राम राम ! 'दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा' कहलाने वालेकी यह दशा ? इसवार सती की क्रोध मूर्त्ति के तेजसे वह परमस्नेत प्रकाश भी मलिनसा होगया।कामोन्मत्त अकबरने कहा–प्रिये ! चाहे जो कुछ कहो, परन्तु आज दिल्लीपति की आशा को पूरा बिना किये न जासकेगी । इतना कहकर फिर आलिंगन करने के लिये भुजा उठाई, तब तो दाँतों से दाँतों को पीसती हुई परम क्रोध में भरी किरणमयी कहने लगी कि–फिर । वही चाण्डालता ? । अब अकबरने विचारा कि–नहीं निहोरों से काम नहीं चलेगा, भय दिखाकर इस को काबू में लाना चाहिये । प्रकाशरूप से कहने लगाकि–हाँ फिर ! क्यों मुझे भी भय दिखाती है ? ध्यान है किस के साथ बातें कररही है ? । सती किरणमयी ने उत्तर दियाकि–हाँ जानती हूँ–कपटी, अधर्मी, काम के कूकर, दिल्लीके बादशाह के साथ उसके ही योग्य शब्दों में बातें कररही हूँ।बादशाह ने कहा–क्या अब तेरी गरदन मरवादेने का ही हुकुम दूँ ? अब भी मेरा कहना मानजा ? । सती ने उत्तर दिया कि

अरे मूर्ख ! क्या कहता है, तू चतुर और राजनीतिज्ञ बनता है ? हिन्दू रमणी को मरने का भय दिखता है ? बादशाह ने कहा-आज मेरे हाथ से तेरे प्राणों की कुशल नहींहै, इतना कहकर कामोन्मत्त अकबर फिर सतीके ऊपर आक्रमण करने को उद्यत हुआ । बार बार सतीत्व का नाश करने के लिये ऐसा उद्योग ?, इस समय असहाया अबला किरणमयी अनाथ नाथ दोनों के पालक भगवान की प्रार्थना करने लगी कि-हेनाथ ! हे त्रिलोकीपते ! आज अपनी दासी के ऊपर प्रसन्न हूजिये, नारीधर्म की रक्षा करिये, हे विपदभंजन ! हे लज्जा के हारन हार ! एकदिन आपही ने उस पापी कौरवों की सभा में द्रौपदी की लज्जा रक्खी थी, आज इस पापी मुगल के ग्रास से भी अपनी पुत्री की रक्षा करो । हे मैया ! हे सती कुलशिरोमणि ! हे आदि शक्ति भगवति ! तू ही आज मेरे मुख की लज्जा रक्खेगी । इसप्रकार ध्यान करते २ उस सती के नेत्रों में टप २ आँसू गिरने लगे, और कामी बादशाह उस समय भी कुदृष्टि से सती के उस अलौकिक रूप कोदेखकर अधिकतर मोहित हुआ । एकसाथ दीपक की लोह कांप उठी, एकाएकी मानों वह प्रकाश नीला पडगया, उस नीले प्रकाश में सैंकडों विभीषिका प्रकट होने लगीं । सतीने एक साथ गरज कर सिंह वाहिनी की मूर्त्ति धारण करी, अपने आप चोटी खुलकर लम्बे २ केश चरणोंतक लटकने लगे, ओढ़नेका वस्त्र भूमिपर लटकनेलगा, नेत्रों के स्थिर दृष्टि इसवार सत्य २ ही पलकहीन होगई । कमर में लगी हुई उस तीखी छुरीको दाहिने हाथ में लेकर सती किरणमयी अचल प्रतिमाकीसमान स्थिर खड़ी होगई आहा ! बलिहार ! सत्य २ ही वह सिंहवाहिनी मूर्त्ति आज इस पुस्तकको लि-

खतेमें हमारेनेत्रोंके समान खड़ीसी प्रतीत होरहीहै सामने उस भीम भैरवीरुद्राणीकी मूर्त्ति को देखकर-मुगलअकबर अबकी बार भीत,' चकित और स्तम्भित होगया, न जाने उसकी कामलालसा कहां विलागई.हृदय में भय और भक्ति का सोता प्रकट हुआ, सिंहवाहिनी मूर्त्ति ने अबकी बार कांपते कहा कि बोल, छाती पै हाथ रखकर आकाशकी ओरको देखकर कसम खा कि अब आगे को मैं किसी भी परस्त्री की ओर को कुदृष्टि से नहीं देखूँगा। बलसे छल, से, लोभसे किसी भी कुलीन स्त्री का सतीत्व नष्ट नहीं करूँगा, तब ही मैं तुझे क्षमा करूंगी, नहीं तो यह तीखी कटार अभी तेरे हृदय का खून पियेगी। धर्म के प्रबल प्रताप से अधर्म सदा ही भयभीत और कांपता रहता है। इसबार मुगल बादशाह भयभीत होकर अपनी आँखोंके सामने मानोसाक्षात् यमराज को देखकर थर२कांपनेलगे। संसार की दशाही ऐसी है-पुण्य और पवित्रता के सामने अधर्म और पापको नमना ही पडता है। बादशाह का कंठ भर आया और नेत्रों से आँसू बहाते हुए अटकते हुए शब्दों में मैया! मैया! कहकर सती के चरणों में लोटने लगे और अपने अपराध की क्षमामांगी, धर्म की जयहुई। सती भयानक अग्नि परीक्षा के पारहुई। बादशाह ने विचारा था कि-पृथ्वीराज की स्त्री का सतीत्व को नष्ट करने पर दो प्रयोजन सिद्ध होंगे, कामवासना तो पूरी होगी ही इस के सिवाय पवित्र शिशोदिया कुल में अमिट कलङ्क भी लगजायगा, क्योंकि-पृथ्वीराज की स्त्री महाराना प्रतापसिंह के छोटे भाई शक्तसिंह की कन्या है, इस बातको अकबर जानते थे। प्रतापसिंह ने आजतक किसी प्रकार भी मुगलों के सामने शिरनीचा नहीं किया, इसकारण सब प्र-

कार का सुख पातेहुए भी बादशाह मन ही मन में बडे असन्तुष्ट रहते थे। अतः जैसे भी होसके तैसे प्रतापसिंह के सन्मान को नष्ट करने में ही वोह आनन्दित होना चाहते थे, पृथ्वीराज की स्त्री का सतीत्व नष्ट करनेके लिये इतनी चेष्टा और चतुराई करने में भी बादशाह का गूढ प्रयोजन था। प्रयोजन और इच्छा चाहे जो कुछ हो परन्तु धर्म की कल में पडकर आज बादशाह को उस सती किरणमयी को माता कहकर पुकारना पडा। यह शिक्षा बादशाह को अपने जीवन भर में प्रथम ही मिलीथी।पवित्रचरित्रा किरणमयी ने मोहान्ध दिल्लीपति के जीवन में यह प्रथम ही धर्म का दीपक प्रज्वलित किया। कवि और इतिहास के लेखक चिरकालतक उस परममहिमामयी राजराजेश्वरी आर्यकुललक्ष्मी किरणमयीको देवी कहकर वर्णन करेंगे।

पृथ्वीराज ने यथासमय एकर करके सब वृत्तान्त जान-लिया, स्त्री के ऊपर उनका अटलविश्वास था, इस विषय में उन्हों ने अपने में बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं रक्खा, समानभाव से, समान आदर से समान प्रीति से वह अपने स्त्री के प्रेम में आबद्धरहे, इसके सिवाय आयु की वृद्धि के साथ २ प्रेम भी अधिक गाढा होनेलगा।

उन्नीसवाँ अध्याय।

हल्दीघाट के पहिले युद्धमें प्रतापसिंह का पराजय और शक्तसिंह के साथ उनका पुनर्मिलन पाठकों को स्मरण हो होगा, अब इसके अनन्तर महाराना के भाग्य में और क्या हुआ ? इसका भी वृत्तान्त जानना उचित है। बादशाह का पुत्र सलीम संग्राम में जय पाकर परम प्रसन्न होतेहुए दिल्ली

को लौटगये । उदयपूर शत्रुओं के हाथ में पहुँचगया। फिर घोर वर्षाका आरम्भ होजाने से उन दुर्गम पहाड़ी देशों में मुगल नहीं जासके, इसी अवसर में महारानाने बचेहुए राजपूतों को इकट्ठा करके फिर युद्ध करने की तयारी करडाली, दूतने यह समाचार वादशाह को दिया, वसन्त आनेपर फिर मुगल आये और घोर युद्ध हुआ, परन्तु दुर्भाग्यवश महाराना इस वार भी पराजितहुए। फिर मुगलोंने महाराना की नई राजधानी कमलमीर के ऊपर चढाई की, इसवार राजपूतों ने वड़ी वीरता के साथ मुगलोंका आगेको बढना रोकदिया, हजारों मुगलों को यमलोक पहुँचादिया, तवतो वादशाही फौज हताश होकर लौटनेका उद्योग करनेलगी, परन्तु हाय! महाराना जीतकर भी अपनी जाति के एक पापी पुरुष के विश्वास घातकपने से अन्त में हारगये। जव मुगलोंने देखा कि–अवकी वार यह थोड़े से राजपूत भी हमारे कावूके नहीं हैं, अपने देश की रक्षाका दृढ संकल्प करके प्रवल पराक्रम और अद्भुत वीरता से हमारी फौजोंको गाजर मूलीकी समान काटेडालते हैं, तव वह भागनिकले। उस समय मुगल सेना पति शाहवाजखाँने एक चालाकी की, उसने यह खोजलगाई कि–इस राजधानी में महाराना का घरका भेदी शत्रु कौन है, दुष्ट और डाह करनेवाले भी संसार में सवही जगह होते हैं, शाहवाजखाँ को अधिक खोज न करनीपड़ी, महाराना से डाह करनेवाले एक राजपूत ने आकर शाहवाजखाँ को जीतने की एक सहज युक्ति वतादी, इस स्वदेशद्रोही राजपूत का नाम था आवूपति देवलराज। यह महाराना के साथ वहुत दिनों से डाह रखता था। महाराना का दिग्विजयी नाम और संसार भरमें प्रतिष्ठा, इसको अच्छी नहीं लगती थी, उसको

इस बातका बड़ा दुःख था कि–मेरा राज्य प्रतापसिंह से किसी प्रकार कम नहीं है फिर भी मुझको कोई नहीं मानता और भय–भक्ति–तथा सन्मान की दृष्टि से नहीं देखता, इस का क्या कारण? प्रतापसिंह में मुझसे अधिक क्या लगा है? ऐसे ही खोटे विचारों से देवलराजने अपने हृदय को नरक समान बनारक्खा था, अतः इस समय अवसर पाकर सहज में ही मुगलों के साथ मिलगया और उनको एक खोटी सलाह देकर कमलमीर में एक भयानक श्मशान बनादिया। शाहबाजखाँ ने जब देखा कि–अबहम मुकाबिले की लड़ाई में राजपूतों से किसीतरह पेश नहीं लेजासकते और अब हारमानकरभागेबिना प्राणरक्षा भी नहीं होसकती तब दुष्ट देवलराजकी सम्मति से एक महा अनर्थ करडाला। कमलमीर में जितने सरोवर और झरने थे, शाहबाजने उनसबों में एकसाथ एक समय में अपने आदमियों से घोर जहर डलवादिया उस जलको जिसने पिया वही तमाम होगया, एकही घड़ीमें सैंकड़ों राजपूत यमलोक को सिधारगये, कौन जानता था कि सर्वत्र ही जलमें जहर मिला है। जलविना पिये कबतक रहाजाय? उस समय और कोई उपाय न देखकर महाराना को नगर त्यागनापड़ा। उनके साथ सहस्रों राजपूत कमलमीर को त्यागगये, इस घोर विश्वासघातीपन और भयानक अधर्म को देखकर महाराना के नेत्रोंमें जल भरआया, उन्होंने समझा कि भूतलपर स्वदेशद्रोही अकेला मानसिंह ही नहीं है, देवलराज मानसिंह से भी बढकर भयानक जीव है, ऐसे कुल कलङ्कों के कारण ही राजपूतों की यह हीन दशाहुई है, मुगलोंने देश को नहीं जाती है, किन्तु घर के लोगोंने ही देशको जीतकर विधर्मी बादशाह के हाथ में देदिया है। जहाँ रहकर महाराना कठोर व्रतको धार मनु-

ष्यताका सर्वोत्तम चित्र दिखारहे थे, जहाँ पत्तों की कुटी बनाकर अपने को चक्रवर्त्ती राजा से भी अधिक भाग्यवान् समझते थे उसही प्यारे कमलमीर को जब महाराना ने चित्त में दुःख मानकर त्याग दिया, उससमय मुगलों के साथ युद्ध करना उनके लिये असम्भवसा होगया और उन्हों ने सहज में ही अपनी नई राजधानी कमलमीर शत्रुओं को सौंपदी उससमय महाराना मेवाड़ के दक्षिण पश्चिम भाग में चप्पन नामक पहाडी प्रदेशके चाँद नगर में जाकर रहे, तहाँ भील ही महाराना के कुटुंबी, पडोसी, वान्धव और सहायक हुए। दुर्भाग्य वश यहां भी वहुत दिन न रहसके, यहाँ भी मुगलों ने पीछा किया और घोर युद्ध हुआ, इस युद्ध में भी राजपूतों ने अद्भुत वीरता दिखाई,परन्तु हाय ! प्रारब्ध प्रतिकूल होने से अन्त में महाराना की पराजय ही हुई, एकतो उन के पास सेना वहुत ही थोडीथी, इस के सिवाय नये स्थान पर आकर एकायकी युद्धकी ठीक तयारी भी नहीं वनसकी, उधर मुगलों की सेना अपार थी और वह सवप्रकार युद्धकी तयारी करके आये थे, फिर महाराना की जय होही कैसे सकती है ? । इसप्रकार कई युद्धों में महाराना की पराजय हुई, एकदिन ऐसा होगया कि-मेवाड की तिलभर भूमि में भी महाराना का अधिकार नहीं रहा,राजराजेश्वरको मार्ग का भिखारी वनना पड़ा, थोडे से विश्वासी सेवक ही महाराना के साथी रहे । धनका अभाव होनेपर महाराना ने सेना को भी विदा करदिया, अन्न रहने का कोई स्थानभी नियत नहीं रहा, जो दिन जहाँ सहज में कटा तहाँ ही विताद‍िया। अन्त में उस त्यागे हुए जङ्गल समान उदयपूर में जाकर रहे, परन्तु यहाँ भी वादशाह ने मानसिंह की सलाह से सेना को चढा

भेजा। जैसे बनें तैसे बादशाह महाराना को नमाना चाहता था, अकबर ने विचारा कि-जब अंबर, बीकानेर, मारवाड और अजमेर आदि के सबही राजोंको मैंने वश में करलिया, है तो क्या मैं एक राजपूत को अपने अधीन नहीं करसकूँगा। देखूँ प्रतापसिंह का प्रताप कबतक ठहरता है ? इसकाम को साधने के लिये बादशाह ने चारों ओर असंख्य सेना नियुक्त करके यह सूचना देदी कि जो पुरुष प्रतापसिंहको बन्दी करके दिल्ली में लावेगा या किसी प्रकार उनको मेरी अधीनता स्वीकार करादेगा, उसको मैं अपनी बादशाहतका दशवाँ भाग ईनाम में दूँगा। इस ईनामकी बात सुनते ही मुगल सेना प्राणों की बाजी लगाकर महाराना का पीछा करने लगी, परन्तु न जाने किस गुण से महाराना बराबर शत्रुओं से अपनी रक्षा करते रहे, मुगल सेना वन और पहाडों में पत्ता २ खोजकर महाराना का पीछा करती थी, परन्तु महाराना का कोई बाल बाँका भी नहीं करसका, किसी की शक्ति नहीं हुई कि- उन को बन्दी करके बादशाह के सामने मस्तक झुकवावे। इसके सिवाय महाराना उन मुट्ठीभरे साथियों को लेकर ऐसे अद्भुत पराक्रम से उस गर्वीली मुगलसेना पर आक्रमण करते थे कि वह किसी प्रकार सन्मुख नहीं ठहरसकते थे। महाराना ने थोड़े ही से सेवकों की तीखी तलवार और भीलों के धनुषबाणोंकी सहायता से अपना अन्तिम आश्रय चौन्दस्थान मुगलों से फिर छीन लिया, मुगलों को वहां से अपना लदू पदू लेकर दिल्ली को लौटना पड़ा, इधर वर्षा का प्रारम्भ होने से लड़ाई बन्द होगई, महाराना फिर कुछ दिनों तक निष्कण्टक होकर उन जंगली भीलों के साथ रहते रहे। परन्तु बादशाह को वर्षा में भी चैन नहीं पड़ा, अगणित सेना और

युद्ध की सामग्री आरावली के चारों ओर भेजते रहे और वर्षा के अन्त में वसन्त आते ही फिर महाराना के ऊपर टूट पड़े, परन्तु मुगलों की यह आशा दुराशामात्र थी, महाराना को वन्दी या नत करना मनुष्य के शक्ति से बाहर था, परन्तु अब फिर महाराना को चॉन्द नगर छोड़कर गहनवन और पहाड़ों में जाना, पड़ा इस दुर्दशा में प्रतापसिंह के हृदय की प्रतिज्ञा और दृढ़ हुई, परन्तु छोटे २ बालक और परिवार इस समय उनका कालस्वरूप होगया। इस परिवार के सिवाय और भी बहुत से पुरुष छाया की समान उनके गले का झाड़ बनकर साथ साथ फिरते थे, उनकी सर्वप्रकार से रक्षा महाराना को ही करनी पड़ती थी, परन्तु आज प्रताप सिंह के पास परिवार का भरणपोषण करने के लिये साधारण गृहस्थ की समान भी सामग्री नहीं है। आज मार्ग का भिखारी भी प्रतापसिंह से सुखी है, अतः निःसन्देह आज परिवार ही प्रतापसिंह को कालरूप दीखरहा है, शत्रुओं से उनकी रक्षा कैसे कीजाय ? यही उनको बड़ीभारी चिन्ता थी, दो घड़ी को भी कहीं निश्चिन्त होकर नहीं बैठसकते थे,—"यह मुगल आये, यह पकड़ा, यह मारा, वह परिवार को दुःखित किया" इस दुश्चिन्ता ने ही उनको उन्मत्तसा कररक्खा था। वास्तव में मुगल भी बड़ी नीचता करने लगे जिस समय किसीप्रकार भी महाराना को वश में न करसके तो उनके परिवार की वेइज्जती करने की बात लगाने लगे, इस समय महाराना ने समझा कि सत्यही विधाता हमसे प्रतिकूल होरहा है ऐसी चिन्ताओं में घुलते २ अब कष्ट की सीमा नहीं है, आज सारा दिन बीतगया जल पीने के लिये साधारण भोजन तक नहीं मिला है सांझ के

समय कईएक अनुचर बडे कष्टसे किसी प्रकार कुछ भोजन का प्रबन्ध करके राजा और राज परिवार को खवासके, हाय ! आज एक समय साधारण भोजन का भी ठिकाना नहीं है, होय ही कहां से ? जब कि–मुगल वन और पहाडों में पचा २ करके महाराना को खोजरहे हैं । राजराजेश्वर प्रतापसिंह आज भिखारी वेश में परिवार को लियेहुए एक वन से दूसरे वन में छुपेहुए फिर रहे हैं, सारे दिन घूम कर बडे कष्ट से कुछ कडुए साग और वन के फल लेकर एक वृक्ष के तले या पर्वत की गुफा में बैठकर खाने को उद्यत हुए हैं कि–इतने ही में एक भक्त भील ने आकर समाचार दिया कि–महाराना ! यहांसे चलिये २ सैकडों मुगल हतियार उठाएहुए इधरको आरहेहैं, उन्होंने जानलियाहै कि-आप परिवारके साथ यहां विश्राम कररहेहैं। आधे खाए हुए शाक और फलोंको तहां ही छोड़कर महाराना शी तास दूसरे वनमें परिवार को साथ लिये जारहे हैं किसी२ दिन छोटे२बालकों सहित निराहारही रहे हैं, भूँख से बालक बेहोश हुएजाते हैं , पिआसके मारे कंठ सूखेजाते हैं, कोई अनुचर कहीं से कुछ फल और जल लाता होगा इस बाट में टकटकी लगाए चारों ओरको देखरहे हैं, इतने ही में कोई अनुचर कुछ खाद्य और जल लाया है, वही सन्तान को बाँटकर थोडासा आप भी खाने को हुए हैं कि–दीन२ करतेहुए मुगलों ने आघेरा बस भोजन और जल को तैसा ही छोड़ भूखे प्यासे, बालकों के बिना धुले हाथ पकड़ेहुए किसीप्रकार गुफाके भीतर जाकर परिवार की रक्षा करते हैं, उधर मुगल कुछ दूँढ भाटकर निराश हो लौटगये । इसप्रकार एकाध दिन नहीं , बहुत दिनोंतक दारिद्र्यने अपनी कराल भृकुटि दिखाई को-

मलशरीर छोटे२ पुत्रकन्या भूख से व्याकुल हो महाराना के गलेसे लिपट२ कर रोते थे-तथापि प्रतापसिंह अपनी दृढप्रतिज्ञा से चलायमान नहीं हुए। बादशाहका गुप्त दूत आया, गुप्तरूप से उसने महाराना की दुःखदशा को अपने नेत्रों से देखा,बादशाहको सब वृत्तान्त सुनाया,अकबर ने उत्तरदिया कि-"महाराना एकबार इतनाही कहदें कि-मैंने हारमानली, अब मैं सन्धि (सुलह) चाहता हूँ, मैं अभी उनको सन्मान के साथ सारी मेवाड़ लौटादूँगा। दूत फिर दिल्ली से चला और बड़े कष्ट से महाराना का पतालगाया और प्रणामकर अपना परिचय देतेहुए,चीखमारकर रोनेलगा तथा बादशाह का आखिरी हुक्म सुनाया। पवित्र कीर्त्ति प्रतापसिंह नीचेको देखनेलगे और दूतको समझाबुझाकर बिदाकरदिया। महाराना की दशा देखकर दूत चीखमारकर रोनेलगा परन्तु महाराना का चित्त उससे कुछ भी विचलित नहीं हुआ। सरदारों में से किसी २ ने महाराना के मुखकी ओर को देखा, महाराना ने सरदारों की इच्छा को समझकर कुछ त्यौरी चढाई। कुमार अमरसिंह, पिताकी संमति सूचक आज्ञाको सुनने की आशा से खड़े होगये, महारानाने पुत्रकी ओर को विषैली तिरछी दृष्टि से देखा, यह सब बातें बादशाह के दूतके सामने ही हुईं, दूत हताश होकर स्त्रियों की समान डकराकर रोता २ चलागया। महारानाने कहा-सरदारों! क्या तुम चुपसाधे हुए मुझे सम्मति देते थे? क्या इसी का नाम मनुष्यता है? क्या इसी का नाम व्रतपालन है? जिन्होंने माया का खेल खेलते २ हमको इस दशामें डाला है, वही आज दूत के हृदय में प्रकट होकर मेरी परीक्षा लेनेको आये थे। नहीं प्राणलेवा शत्रुका दूत मेरी दुर्दशा को देखकर रोता क्यों? और बा-

दशाह ही अचानक ऐसा सन्देशा क्यों भेजता ? जिन्होने
इस दूत और बादशाह के मनको लौटादिया है, यदि चाहेंगे
तो वही इच्छामय एकदिन हमारी आशाको पूराकरेंगे। तुम
जो चुपसाधेहुए मन २ में मुझको अधर्म से लिप्तहोने की स-
म्मति देते थे, इस पापका पश्चात्ताप रूप प्रायश्चित्त करो।
और अगर मेरा पुत्र होकर तेरी यह क्या दशा है ? इतना
सुनतेही कुमार अपराधीकी समान कांपताहुआ नीचे कोदेखने
लगा, दुर्भाग्य, दुःख और दुर्दशा के ऊँचे शिखरपर पहुँचकरभी
महाराना ने अपनी प्रतिज्ञा को नहीं छोडा। पुरुषत्व के पूर्ण
अधिकारी पुण्यात्मा प्रतापसिंह की उस समय की दशा का
स्मरण करने से भी शरीर पर रोमाञ्च खडे होते हैं। भोजन
न मिलने से कष्ट पाते हुए कोमलशरीर बालकों का मलिन
मुख, महारानी का वह भिखारिनी की समान मलिन वेशमें
रहना और कई दिनतक परिवार सहित महाराना के मुखमें
दाना भी न जाना, इत्यादि कोई विपत्ति भी प्रतापसिंह को
प्रतिज्ञा से न डिगासकी। योगी योगबल से जीवात्मा को
परमात्मा से मिलाते हैं, परन्तु संसारी प्रतापसिंह ने स्त्री पुत्रा-
दिरूप माया के जाल में बँधकर भी जीवन को योगमय कर
डाला था, महाराना का यह दारिद्र्य दुःख कोई सहज बात
नहीं थी, जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्ण की परीक्षा होती है,
तैसे ही दारिद्र्य दुःख में मनुष्य की वास्तविक परीक्षा होती
है, प्रतापसिंह ने इस परीक्षा में सब से ऊँचा पद पाया था।
आहा ! महाराना की उस देव समान सत्यप्रतिज्ञा को स्मरण
करने से हृदय में-विस्मय, आनन्द और भक्तिका प्रवाह उम-
डने लगता है। एकवार मुखसे 'मैने हार मानली' इतना
कहदेने से ही यह जितने थे उससे भी अधिक ऐश्वर्य शाली

होसकते थे, जो चाहते वह पासकते थे, परन्तु दुर्दैव की निर्दय चक्की में पिसते हुए भी उन्होंने इतना नहीं कहा, कण्ठगत प्राण होने पर भी मुखसे इतनी बात नहीं निकाली, एकवारभी हाँ नहीं की, किन्तु जिन्होंने इस विषय में गुप्त या प्रत्यक्षरूप से सम्मति का पक्ष लियाथा उनको दो चार उलटी सीधी सुनाई ऐसी घटना एकवार नहीं हुई, किन्तु अनेकोवार नानाप्रकार के लोभ दिखा २ कर गुप्तदूत भेजरकर अकबरने यह चाहा कि-किसी प्रकार महाराना सन्धिकी प्रार्थना करें, परन्तु अकबर की सब आशा वृथा हुई, कितने ही वर्षोंतक महाराना दुर्भाग्य दारिद्र्य की परम पीडा से पिसते रहे परन्तु सन्धिकी प्रार्थना नहीं की, तिरस्कार स्वीकार नहीं किया, शत्रुका अनुग्रह नहीं चाहा, मुगल का दान ग्रहण नहीं किया। इसी कारण कहा कि-महाराना की उस देवसमान सत्य प्रतिज्ञा को स्मरण करने से हृदय में-विस्मय आनन्द और भक्तिका प्रवाह उमडने लगता है। अधिक क्या-विधर्मी, चिरशत्रु मुगल भी इस समय से महाराना में आन्तरिक श्रद्धा करनेलगे महाराना के इस अपूर्व मनुष्य वा व्रतपालन को देखकर बादशाही दरबार के सहृदय पुरुष प्रायः प्रतापसिंह की प्रशंसा करते थे और नवाब खानखाना ने तो मारवाडी भाषा में यह दोहाभी लिखकर भेजा था कि-

> ध्रम रहसी रहसी धरा, खिसजासे खुरसांण।
> अमर विसंभर ऊपरे, राखि न नहचो राण॥

इस से तात्पर्य यह है कि-महाराना साहब! परमेश्वर पर विश्वास रखिये, आपका धर्म और देश दोनो बने रहेंगे। और बादशाह हार जायगा।

कइवार कहचुके हैं कि-अभागा परिवार ही महाराना का

कालास्प हुआ, उनकी चिन्ता करते २ ही स्वदेश प्रेमी म-हाराना अधीर होजाते थे, उस परिवार की चिन्ता में भी एक समय पूर्णज्ञान पाकर उन्मत्त की समान विलाप करनेलगे कि-हा मेवार ! हा चित्तौर ! हा जननी जन्म भूमि ! वनके भीलोंनेही उस समय वास्तविक भाई की समान सहायता दी, उन्होने ही जैसे तैसे महाराना के परिवार के प्राणवचाये, मुगलों के घेरलेने पर भीलोंने ही एक वनसे दूसरे वनमें एक पहाड़ से दूसरे पहाड़पर लेजाकर, सैंकडो मुगलोंको काट छाँटकर महाराना के बालबच्चों को बचाया, कितनी ही वार अकेले महाराना नेही सैंकडों मुगलों के शिर काटकर परिवार की रक्षाकी । तथापि, कितनाही करो स्त्री पुत्रादि को साथ रखकर हरसमय युद्ध करना नहीं बनसकता इस लिये महाराना उनको किसी बेखटके स्थानपर ही रखना चाहते थे, राजपुत्रादि को भूंखलगने पर कभी २ जंगली भील ही अपने खाने का वनका शाकपात देदेते थे, भूंखे बालक राजकुमार उसको ही अमृत मानकर खालेते थे, यह दशा देखकर महाराना के नेत्रोंमें से टप २ आँसू गिरने लगते थे, भील लोग प्राणपण से महाराना का इच्छित काम करते थे। एकदिन ऐसा हुआ कि-यदि भील न होते तो नजाने महाराना के परिवार की क्या दशाहोती ! महाराना दुर्गम वन में परिवार सहित बैठे थे इतने ही में चारों ओर से ' दीन दीन ' का शब्द आनेलगा , दो विश्वासी भीलों ने तीर की समान शीघ्रता से आकर हाँपते २ अपनी भाषा में कहा कि-महाराज ! शीघ्रही स्त्री पुत्रादि को सम्हालो, महाराना ने विचारा कि-आज मुगलों ने चारों ओर से घेर लिया है आज परिवार को बचाना कठिन है।और अब यहाँ

से निकलकर जाना भी असम्भव है,कुछ विचारकर दो भीलों को इशारा किया कि-तुम अपने दलबल की सहायता से किसी प्रकार परिवार को यहाँ से निकालकर कहीं छुपादो, मैं अकेला ही आज सैंकड़ों मुगलोंके साथ युद्ध करूँगा,इतनी आज्ञा पातेही दोनों भीलोंने अपने दलको बुलाया और टोकरियोंमें छुपा२कर राजपरिवारको एक गंभीर वनमें लेगये। इधर महारानाने शीघ्रतासे तलवार उठा हुंकार करतेहुए मूर्तिमान यमराज की समान अकेले ही सैंकड़ों मुगलों के प्राण लेने का सङ्कल्प किया और क्षणभर में प्रायः दोसौ मुगलोंको भूमिपर सुलादिया, बाकी के अपने प्राणों को लेकर भागगये, इससमय दुर्दिन के बंधु कुछ रहेहुए भीलोंने भी महाराना के बराबर खडे होकर सहायता की। इधर परिवार को एक घोर वन में छुपाकर एक भीलने आकर खबर दी कि-महाराज! आप का परिवार बेखटके है, हम जवरा के जंगल में रखकर मानु कानु मानु का पहराकर आये हैं, आप की इच्छा होतो आप भी चलिये। यह समाचार सुनकर महाराना निश्चिन्त तो हुए परन्तु हर्ष और विषाद के कारण नेत्रों में जल भर आया और उसी समय दो एक भक्त अनुचर और सरदारों को साथ में लिये हुए उस महावन में को चलदिये तहाँ पहुँचकर महारानाने देखा कि-उनका प्राणोंसे भी अधिक प्रिय परिवार वृक्षके गुद्दोंमें बेतकी टोकरियों में लटकरहा है, कहीं शेर बघरा आदि आकर मार न डाले, इस भयसे भीलोंने टोकरियों में बैठाकर पेड़में टांगदिया है और उस वृक्षके चारों ओर इस प्रकार जाल लगारक्खा है कि-यदि कोई हिंसकजीव तहाँ आभीजाय तो जाल में फँसकर अपने प्राणों सेभी हाथ धोबैठे। भीलों की ऐसी आन्तरिक

भक्ति को देखकर महाराना के नेत्रोंमें से टप २ आंसू गिरनेलगे, इसी समय एक भीलने हाथ जोड़कर कहा कि–महाराना! रोइये नहीं, तुम्हारे यह दिन नहीं रहेंगे, आपको रोते देखकर आपके स्त्री पुत्रादि भी घवडाकर रोनेलगेंगे, वह देखो आपको देखकर रानीमायीनेभी रोना प्रारम्भ करदिया! हा भगवन्! सरलचित्त भीलों के समझाने से और उनकी सच्ची सहानुभूति (हमदर्दी) से महाराना सावधान हुए, फिर प्रेम में भरकर एक २ करके सवभीलों को छाती से लगाया, महाराना का आलिंगन पाकर सब भीलोंने अपने को धन्यमाना। उस जवरा के घोर वनमें परिवार सहित रहतेहुए महाराना ने बहुत से दिन काटे, इतनी दूर घोर जंगल में मुगल पीछा न करसके, क्या अबभी व्रतपालन में कुछ बाकी रहगया?।

महारानी पद्मावती ने, आशा की समाधि के खंभेपर खड़ेहुए इस समय भी मुसकरातेहुए महाराना को दृढ़चित्त से व्रतपालन के लिये उत्साहित किया, एक दिन स्वामी और स्त्री में इसप्रकार वातचीत हुई–महारानाने कहा प्रिये! सब सुपनासा दीखता है, आज इसी प्रकार १८ वर्ष वीतगये, परन्तु व्रतका उद्यापन नहीं हुआ!। रानी–स्वामिन् यदि यह कठोर व्रतही स्वप्न है तो फिर सत्य क्या है? । महाराना प्रिये! जब कोई फल न निकला तबमें तो सुपनाही समझता हूँ, आजतक मैं देशका कुछभी काम न करसका (फिर नेत्रों में जलभरकर गद्गद् कण्ठ से कहनेलगे) हाँ देशकी हानि मैंने बहुत कुछ की है, पिताजी ने एक चित्तौर ही खोईथी और मैंने बड़ी आशा बाँधकर सर्वस्व खोदिया–अन्त में वनवासी भिखारी बनगया। रानी–परन्तु नाथ! इस भि-

क्षुद्रदशामें भी, राजराजेश्वरकी समान आपका महान् अन्तःकरण है, राजपूतजाति के हृदय में आपनें जो बीजबोया है, उससे एकदिन स्वाधीनता का अविनाशी वृक्ष उत्पन्न होकर विशाल भारतभर को छालेगा, नाथ! दुःख की कौनबात है? । महाराना फिर कहनेलगे कि–प्रिये! सहस्रों राजपूत मेरे मुखकी ओर को देखकर इस देशके लिये प्राणखोगये, मेरे कारण ही उनके इस जीवन की सुख–आशा और जगत् के कार्य समूल नष्ट होगये, क्या इसमें मैंने देशका कुछ मंगल किया? । रानी–नाथ! मङ्गल? और मंगल किसको कहते हैं? स्वाधीनता के मंगल मंदिर में आपने अपने को वलिदिया है, उसमें आपका राज्य–धन-ऐश्वर्य आदि सब अर्पण होगया है, तुम्हारे प्राणों के पुतले बालक भूखे प्यासे पेड़ोंके तले पड़े हैं, आप वनवासी, सर्वत्यागी, संन्यासी बन, गये हो, आपकी धर्मपत्नी यह अभागिनी भी छायाकी समान साथ २ फिरती है, जंगली भीलही इस समय आपके पड़ोसी बान्धव और सहाय हैं, नाथ! अवभी देशका मंगल न होने का आक्षेप करते हो? । महाराना- प्रिये! मंत्रकी दीक्षाली है, प्राणदेकर भी व्रतका उद्यापन करूँगा, अभीतो मेरे प्राण स्वस्थ हैं, अभीतो जीवन में जैसे तैसे पशुओं की समान वो आहार विहार कररहा हूँ, अभी जीवनयज्ञ में सर्वस्व की आहुति कहाँ देसका हूँ, ? इतना सुनकर रानी पद्मावती नेत्रों से आँसू वहाती हुई गद्गद कण्ठ से कहनेलगी कि–अच्छा नाथ! मैंने हारमानली! । महारानाने कहा–प्रिये! विलाप न करो, जो कुछ मैंने कहा है यह मेरे हृदय की सत्य २ बात है, व्रतका उद्यपान किये विना तो मेरा मन शान्त होही नहीं सकता। फिर महाराना उन्मत्त से होकर

कहनेलगे कि-हा ! मैं बड़ा अभागा हूँ, अभीतक मैंने भगवान् पर भरोसा करना नहीं सीखा, अभीतक मैंने साधना का तत्त्व नहीं पाया, नहीं तो अवतक पाण्डवों की समान कृष्ण को सखावनाकर नर-नारायण होजाता ! हाय! यह अमानुषिक भगवद्भक्ति मुझमें कहाँ है ? । हे अनाथ के नाथ ! हे पाण्डवों के सखा ! प्रभो ! दर्शन दो ? यदि इच्छा होतो अपने इस देश की आपही रक्षाकरो ! ।

बीसवाँ परिच्छेद ।

अवतक पवित्रात्मा प्रतापसिंह के अमानुषिक देव चरित्र का चित्र देखा, अब उन के साधारण मनुष्य चरित्रकी आलोचना करेंगे । जिससमय दुर्दैव ने अपने निर्दयी कठोर हाथ से महाराना को कुचल डाला था, जिससमत दरिद्रता के निठुर कोडेने दुःखित महारानाको उन्मत्तसा करडालाथा, जिससमय बादशाहने बार २ दूत भेजकर महारानाको संधिकी प्रार्थनाकरनेका इशाराकियाथा,उससमयभी प्रतापसिंह अपनी प्रतिज्ञासे डिगकर व्रतच्युत नहींहुएथे,पाठक इसबातको जानेही हुए हैं। परन्तु आजकी घटनासे एक करुणामय दृश्यसे उनका हृदय समुद्र उद्वेलित होगया । एक पर्वत की एकान्त गुफा में बैठकर अभागा राजपरिवार वडे कष्टसे इकट्ठे करे हुए साधारण भोजन को ठीक करने में लगरहा था और महाराना समीप में ही तृणोंपर लेटेहुए अपनी दशा का विचार कररहेथे जिसप्रकार एकओर बढेहुए केश, बडे २ नख, मलिन वस्त्र और वीरत्व प्रकाशक दुर्बल देह महाराना के कठोर व्रतपालन का परिचय देरहे थे और दूसरी ओर मूर्तिमान् दारिद्र्य भी लपकती हुई सहस्रों जीभों को निकाले हुए उन के

साथ २ फिरता था। अभागे राजकुमार भूखे भिखारियों के बालकों की समान पिता माता को घेर कर हींहीं करते फिरते थे। जरा सा भोजन मिलते ही खाने को टूट पडते थे और तृप्ति न होने से हाहा करके रोने लगते थे। राजराजेश्वर महाराना प्रतापसिंह हाडमांस का शरीर लेकर इसदृश्य को भी वरावर चार पांच वर्ष से देखरहे हैं, आज भी वही देखा, रानी पद्मावती भिखारिनी की समान फटे मैले वस्त्रों से शरीर को ढककर, अपनी उस भुवनमोहिनी मूर्त्ति को मलिन करके एक हाथ से चूल्हे में ईंधन देरही है, दूसरे हाथ से उस चूल्हे के ऊपर कुछ सेक रही है, आस पास भूखे बालक माताको घेरे बैठे हैं, वाट देखरहे हैं कि-कितनी देर में चूल्हे पर से रोटी निकले और हम को मिले, और वह रोटी भी काहे की है? किसी जंगली घास के बीजों के चून की। वह घास के बीजों की कई एक रोटियें बनाकर महारानीने आँचपर सेकली और थोडा सा अलोना शाक उवाला। महाराणाके देखते हुए रानी ने बडी कठिनता से नेत्रों के जलको रोककर भूखे बालकोंको वह नीरस रोटी और अलोना शाक खाने के लिये दिया, महाराना के बालकों ने उसी को अमृत समझकर बडे सन्तोष के साथ खाया, परन्तु उनमेंमहारानाकी एकआठ सातवर्ष की कन्याने अपने भोजन में से आधा तो खालिया और दूसरे समय के लिये बचारक्खा, लड़की ने विचारा कि-आधा भोजन खाकर अब आधार करे लेती हूँ और आधा भोजन जब फिर अधिक भूख लगेगी तो खालूँगी, कन्या ने उस रोटी को बड़ी ममता और प्रेम के साथ बचाया, लड़कीको पेटकाटकर दूसरे समयकेलिये भोजन बचाते देखकर रानी रोनेलगी और अपने दुःख में साझी करनेके लिये समीप

में लेटेहुए महाराना की ओर को देखा, परन्तु हिमालय की समान महाराना इस से कुछ विचलित नहीं हुए। परन्तु उसी समय एक और घटना हुई-लड़की अपनी बड़ी आशा से बचाई हुई उस आधीरोटी को एक गड्ढे में छुपाकर अपनी रोती हुई माता के समीप बैठकर मीठे शब्दों में रोनेका कारण बूझरही थी, इतने ही में एक वनविलाव आया और राजकुमारी की उस बड़ी आशा से रक्खी हुई उस की प्राण समान प्यारी, आधी रोटी को गड्ढे में से निकालकर लेगया, अब भूखी बालिका ने ज्योंही उस वन विलाव को रोटी लेकर भागते देखा त्योंही पत्थर को भी पिघलानेवाले करुणस्वर से डकराकर रोने लगी। पास बैठीहुई माताने'क्याहुआ २' कहकर जितना ही कारण बूझा, अनजान बालिका उतनी ही अधिक मचलकर रोने लगी। अबकी बार हिमालय डिगगया, समुद्र ने मर्यादा को छोड़दिया, महाराना थर२काँपने लगे। समीप में ही घास पर लेटे हुए इस दृश्य को देखते ही मानों उनके शरीर में सहस्रों बीछुओं ने डसलिया, उन के प्राणों में दौंकी आग बलउठी। बड़े कष्ट से उन्होंने अवतक जिन असह्य पीड़ाओं को सहा था, वह सब इससमय आँखों के सामने आगई। बालिका का अधभूखी रहकर फिर भूख को बुजाने के लिये आधी रोटी बचाकर रखना और इसघटना के कारण अपनी ओरको देखते हुए रानी का रोना, जहर में बुझे हुए बाणकी समान उनके हृदयको बेधरहा था, तथा उन्होंने यह मर्मभेदी पीड़ा किसी को जानने नहीं दी, परन्तु जब वनविलाव के रोटी लेकर भागजाने से बालिका डकराने लगी तब उस पत्थर को भी पिघलाने वाले करुण विलाप से महाराना का वह अटल योगासन चला-

यमान होगया, हिमालय की समान कठिन प्राण थर थर कांपनेलगे। उनकी आंखों के सामने अन्धकार छागया, माथा घूमनेलगा, अधिक क्या, बालिका के विलाप के साथ, महाराना भी एकसाथ उन्मत्त से हो चीख मार कर रो उठे, उस रोने के साथही बालिका का विलाप थम गया, रानी का रोना रुकगया, सब भयभीत होकर उनकी ओर को ही देखनेलगे कि-सुख दुःख को कुछ न गिनकर श्मशानचारी सदाशिव के नेत्रों में आज जल कैसे आगया? फिर महाराना का समुद्र समान हृदय जिधर को दौड़ा, सहस्रों उपाय करनेपर भी कोई उस की गति को न रोक सका, महारानाने बादशाहसे सन्धि करने का विचार किया इस लीला को सुनकर अचरज में पड़हुए जीवन के साथी वीर चन्दावत, कुमार अमरसिंह और रानी पद्मावती आदि सबही ने विनय करके समझाया और रोकने की चेष्टा की परन्तु समुद्र के प्रवाह को कौन रोकसकता है? भीष्म की प्रतिज्ञा को कौन टालसकता है? सबही भयके मारे महाराना के सामने से हटकर बैठगये। आज सूर्य नियत गति को भूलगया, हिमालय गुफामें घुसगया, महाराना ने सन्धि की प्रार्थना लिखकर दिल्ली को दूत भेजदिया। दूतने दिल्ली पहुँचकर महाराना का पत्र बादशाह को दिया, अचानक महाराना के अधीनता स्वीकार करने में बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ, पहिले तो विश्वासही नहींहुआ कि-महाराना ने अधीनता स्वीकार की हो। वार २ उस पत्र को पढ़ा, सबों को दिखाया, अनेकवार महाराना के हस्ताक्षरों पर ध्यान दिया, जिस समय चित्त को विश्वास हुआ कि-यह हस्ताक्षर तो महाराना के ही हैं उस समय बादशाह के आ-

नन्द की सीमा न रही, राज्यभर में बड़भारी उत्सव मनाने की आज्ञा दी। महाराना के परमभक्त राजपूत कवि पृथ्वीराज को बादशाह ने वह पत्र दिखाया, पत्र लानेवाले दूत को बहुत कुछ ईनाम दिया। पृथ्वीराज ने बड़े संदिग्ध और चित्त में व्याकुल होकर उस पत्र को पढ़ा, बार २ महाराना के हस्ताक्षरों की परीक्षा करनेलगे–बादशाह ने पूछा–तुम जो पत्र को बार २ लौट पौटकर देखरहेहो, क्या तुम्हारे मन में यह सन्देह है कि–प्रतापसिंह ने ऐसा पत्र कैसे लिख दिया ? । पृथ्वीराज ने चौंककर कहा–हाँ हुजुर का अनुमान तो ठीक है ! यदि गुस्ताखी न समझीजाय तो अर्ज करूँ-मुझे तो विश्वास नहीं होता कि–महाराना ने यह पत्र लिखा हो। बादशाह ने उत्सुक होकर म्लानमुख से कहा यदि प्रतापसिंह ने नहीं लिखा तो क्या यह पत्र जाल है? पृथ्वीराजने कहा—हाँ जहाँपनाह ! मुझको यह पत्र जाल ही प्रतीत होता है, महाराना के किसी गुप्त शत्रु ने उनके निर्मल यश में कलङ्क लगाने के लिये यह जाली पत्र बनाया है। बादशाह ने कहा–पृथ्वीराज ! ऐसा नहीं होसकता तुम महाराना में अपनी अधिक भक्ति होने के कारण इस पत्र में अविश्वास कररहे हो, मुझे तो निश्चय होता है–कि हस्ताक्षर प्रतापसिंहके ही हैं। पृथ्वीराजने कहा जहाँपनाह ! मैं प्रतापसिंह को खूब जानता हूँ, यदि आप सारी बादशाहत देंगे तब भी वह नवनेवाले नहीं हैं, निःसन्देह यह पत्र जाल है। कवि सर्वत्र सब समय स्वाधीन होते हैं, बादशाह बहुत दिनों से पृथ्वीराज में आन्तरिक श्रद्धा रखते थे, विशेष कर नौरोजे के दिन, उस सिंहवाहिनी मूर्त्ति के उस तेज और पराक्रम को स्मरण करके बादशाह की श्रद्धा

पृथ्वीराज पर वहुत बढगई थी इसके सिवाय कुछ भय भी होगया था, इसकारण ही दरवार में पृथ्वीराज की इतनी प्रधानता और प्रतिष्ठा थी। संधिपत्र के विषय पृथ्वीराज का हां न करना वादशाह को कुछ असह्य सा हुआ, इसीकारण ही कुछ त्यौरी चढाकर कहनेलगे कि-पृथ्वीराज! यह ठीक नहीं है, तुम प्रतापसिंह की हिमायत करके वार२ ऐसा कहरहे हो; तुम ने कैसे जाना। कि-यह पत्र प्रतापसिंह का लिखा नहीं है! पृथ्वीराज ने धीरता के साथ उत्तर दिया कि-हुजूर की वात में वार २ जुवांदराज़ी करना इस अधीन राजपूत को शोभा नहीं देता है। वादशाह ने कुछ चुप होकर फिर कहा कि-अच्छा तुम अपने मनकी वात साफ २ कहो, मैं वुरा नहीं मानूँगा। पृथ्वीराज ने कहा-हुजूर! मेरा चित्त तो विश्वास नहीं करता कि-यह पत्र प्रतापसिंह ने लिखा हो, वादशाहने उत्तर दिया कि-असम्भव सम्भव सवसमयानुसार होताहै, जरा यहभी तो विचारो कि-इससमय प्रतापसिंहकी दशा क्याहै? पृथ्वीराज ने कहा कि-हां वह इससमय सर्वस्वहीन वनचारी संन्यासी हैं! वादशाह ने कहा इतना ही नहीं किन्तु इस समय प्रतापसिंह पेटके लिये अन्न को भी तरसकर वालवच्चों का हाथ पकडेहुए वने २ में भटकते फिरते हैं, इसपरभी कहीं दोघड़ी को बैठने का ठिकाना नहीं है, मेरे आदमी सदा उनके पीछे लगरहते हैं, इस समय प्रतापसिंह भिखारी से भी गयेगुजरे होरहे हैं। यह सुन पृथ्वीराजने कहा कि-इस से तो इस महापुरुष के चित्त की और भी दृढता प्रतीत होती है, यदि ऐसा है तव तो वह हिमालय की समान अटल प्रतिज्ञावाले हैं, इसपर वादशाह ने कहा कि तो क्या तुम निश्चितरूप से कहना चाहते हो कि यह पत्र प्रतापसिंह का नहीं

है ?, पृथ्वीराज ने कहा कि हां मेरा तो यही विश्वास है, बादशाह ने फिर कहा कि विश्वास अविश्वास की बात नहीं है, यह प्रत्यक्ष प्रमाण की बात है तुम तो उन के अक्षर पहिचानते हो, जरा ध्यान देकर देखो तो सही, क्या यह प्रतापसिंह के हस्ताक्षर नहीं हैं ?, पृथ्वीराज ने मुसकुराकर उत्तर दिया कि हुजूर ! जो जाल बनावेगा, वह क्या हस्ताक्षर बनाने में कुछ कमी करेगा ? इतना सुन बादशाह चिढ़कर कहनेलगे कि क्या कोई ऐसा भी है कि जो मुझ को जाली पत्र लिखने का साहस करै ? अच्छा जबतक इस पत्र की सत्यासत्यता का निश्चय न हो तबतक पत्र लानेवाले दूत को गिरफ्तार रक्खाजाय, इतना कहने की देर थी कि तत्काल निरपराध दूत को गिरफ्तार करलियागया और दरबार बरखास्त हुआ ।

पृथ्वीराज बड़ी चिन्ता में पड़े एक एकांत कमरे में बैठकर नानाप्रकार की कल्पनाएँ करनेलगे क्या सत्य२ महाराना ने ही पत्र लिखा है ? क्या सत्यही अन्त में उन्हों ने विधर्मी मुगल की अधीनता स्वीकार करली, क्या वह व्रत से डिगगये ? आज १८ वर्ष से भी अधिक होगये जिन्होंने सर्वत्यागी संन्यासी बनकर चित्तौर का उद्धार करने के लिये सारी मेवाड़ को खोदिया, क्षत्रियोंकी मानप्रतिष्ठा रखने के लिये जिन्होने शिशोदिया कुल के कुमार कुमारियों को चिरकालतक अविवाहित रक्खा है, उन प्रातःस्मरणीय पुण्यश्लोक, हमीर के वंशधर ने क्या आज अन्त में ग्रहदशा के बिगड़ने से सर्वस्व ही खोदिया ? क्या वह भयानक दारिद्र्य के दुःख में मन्त्रसाधन को भूलहीगये ? हा ! अब इस दुःख के रखने को तो स्थान भी नहीं है ! । फिर मनमें आया कि–बादशाह

का अनुमान मिथ्या नहीं है, यद्यपि महाराना के निर्मलयश में धब्बा लगाने की चेष्टा करनेवाले घरमें ही गुप्तशत्रु हैं, परन्तु हस्ताक्षर तो महाराना के ही मतीत होते हैं ? और बादशाह को झूठापत्र लिखने का साहस भी कौन करसकता है ! और यह दूतभी बाहरी रंगढंग से कोई साधारण पुरुष नहीं मालूमहोता ! प्रतीत होता है इस समय मेरा अनुमान ठीक नहीं है, निःसन्देह मेवाड़ की अन्तिम आशा अब डूब-गई, और इसमें महाराना कोभी क्या दोष दियाजाय ! वह इस समय जिस दुःखदशा में पड़े हैं उसको सुनने से देहका रुधिर जल होजाता है, परमे कठोर पुरुष के भी प्राण अ-कुलाजाते हैं, इसके सिवाय उनके ऐसे निराशाभरे जीवन में कोई उत्साह दिलानेवाला तक नहीं है, हाय ! यदि इस समय मैं उनके पासहोता ! अच्छा मैं उनके पास नहीं रह-सकता तो क्या यहाँ से भी उनको कोई श्रेष्ठसम्मति नहीं देसकता ? आज एकही दिनमें उनका जीवनभर का पालन किगाहुआ व्रतभंग हुआजाता है और साथही मेवाड़ की सब आशाएँ नष्ट हुईजाती हैं, मैं चाहूँगा तो क्या यहाँ सेही इसका कोई उपाय नहीं करसकूँगा ? ऐसे अनेकों सङ्कल्प करते २ पृथ्वीराजने निश्चय किया कि–हाँ ऐसा करने से इस निरपराधी दूतका भी उद्धार होजायगा और मैंभी म-हारानाको अपनी सम्मति देसकूँगा, मैं निश्चय तो नहीं क-हसकता, परन्तु मेरा चित्त गवाही देता है कि–महाराना अपने भ्रमको समझकर फिर भी जगेहुए शेर की समान गरज उठेंगे । इतने ही में तहाँ पृथ्वीराज की स्त्री किरणमयी आई, उसको देखकर पृथ्वीराज ने कहा कि–प्रिये ! बताओ तो सही इस समय मैंने जो कुछ विचार किया है वह सफल

होगा या नहीं ? किरणमयीने कहा–नाथ ! मैं कुछ अन्त-र्यामी विधाता पुरुष थोड़ेही, हूँ, जो तुम्हारी चित्तकी बात समझकर हाँ ना कहसकूँ ?, पृथ्वीराजने कहा–प्रिये ! मैं सती नारी की हाँ ना पर बड़ा विश्वास करता हूँ सच्ची पतिव्रता अपने मुखसे जो कुछ कहदेगी वह किसी से नहीं टलसकता । किरणमयीने कहा–नाथ ! सीता सावित्री समान सतियों के ही बाँटे यह बात है, मेरा ऐसा भाग्य कहां है जो परमेश्वर अनुग्रह करके मुझे ऐसे सतीत्व की भागिनी बनावे ? पृथ्वीराज ने बड़े आदरभाव के साथ किरणमयी से कहा–प्रिये ! तुम वैसी ही सती हो, ओः याद करने से आजभी शरीर पर रोमांच खडे होते हैं, पापी नौरोजे के मेलेके दिन तुमने कैसी तेजस्विता दिखाई थी ! तुम्हारे पुण्यबल से ही बादशाह की बुद्धि सुधरीहै,तोभी कहती होकि मैं वैसी सती नहीं हूं,प्रिये ! बताओ मैंने जो संकल्प कियाहै वह सफल होगाया नहीं ?,इस प्रकार बहुत कुछ प्रश्नोत्तर होनेपर सतीने कहा--नाथ ! आपकी कामना सफल होगी,परन्तु आपने इस समय किस बात का विचार किया है, क्या मैं उस को सुनसकती हूँ ? पृथ्वीराज ने कहा--प्रिये ! तुम से ही छुपाऊंगा तो फिर कहूँगा किस से ? इतना कहकर पृथ्वीराज ने आदि से अन्ततक महाराना के पत्र का सब वृत्तान्त सुनाया, फिर अपना जो कुछ विचार था उसको भी धीरे २ कहनेलगे कि--मैं एक मुगल पहरेदार को लोभ देकर उस दूत को निकलवादूँगा और उस दूत के हाथही महाराना को एक गुप्त पत्र भेजूँगा और पत्र इसप्रकार से लिखूँगा कि--महाराना फिर जीवन व्रत में दृढ़प्रतिज्ञ होकर सन्धि की बात को एक साथ मन से हटा दें, आगे परमेश्वर की इच्छा है, ! तदनन्तर पृथ्वी-

राज नें अपनें विचारानुसार कार्य करके महाराना को पत्र भेजदिया।

अब आइये पाठक महाशय! जरा महाराना की दशा भी देखें, महाराना दूत के हाथ बादशाह को सन्धिपत्र भेज कर क्षणभर को गम्भीरभाव से मौन होकर बैठगये, उस समय महाराना की भयानक मूर्त्ति को देखकर किसी की भी शक्ति नहीं थी कि सामने खड़ा होसकै, उन के मनही मन में जैसी दौं लगरही थी उस को केवल वही जानतेथे कई दिन तक यही दशा रहकर अचानक एकदिन महाराना अधीर और उन्मत्तसे होगये, एकसाथ आपसे आपही क्या कहउठे, मानो उनका विशाल वक्षःस्थल विदीर्ण होने लगा, कितनी ही देर इसी प्रकार बीती, उस दिन ज्यों ही दुपहर ढला त्यों ही पागल की समान चीखमारकर कहने लगे कि-" हाय! इतने दिनों के बाद मैंने आत्महत्या करी मेरी बुद्धि क्योंभ्रष्ट होगई?, फिर हृदय को मसोसकर कहनेलगे कि-अरे कौन है? कोई सच्चाबान्धव होतो इससमय आकर बन्धु-पनेका कामकरो, मेरेप्राणलेकर इस असह्य दुःख ज्वालासे मुझे बचाओ, हे आकाश! तू दयालु होकर अपनावज्र मुझ महा पापी के मस्तक पर छोड! ओः मैं प्रतिज्ञा से हटकर अब भी संसार में विद्यमान हूँ, कौन मेरा मित्र है? शीघ्रही आकर मेरे इस असह्य जीवन की समाप्ति करो। स्वामी का आर्त्त-नाद सुनकर रानी घबडाई हुई दौडकर आई, महाराना तैसे ही उन्मत्त की समान कहने लगे, प्रिये! आगई क्या? मेरी तलवार कहाँ है? शीघ्रही लाकर दे?। रानी ने रोते२कहा नाथ! एकायकी यह हुआ क्या? कहो तो सही? महाराना नें कहा प्रिये! होता क्या-मैंने अपने हाथ से ही सर्वनाश

करलिया ! धिक्कार है मुझ को जो मैंने मुगल की अधीनता के लिये लिखा ! महाराना झपटकर गुफामें गये और अपनी तीखी तलवार लाकर रानी के हाथ में दे कहने लगे कि–प्रिये स्वामी की अन्तिम आज्ञा का पालन करो, इसतलवार का प्रहार करके मुझे असह्य पीडासे छुटाओ रानी घवडाकर कहने लगी कि नाथ ! यह क्या सुनरही हूँ ? क्या मेरे प्रारब्ध में अन्त में यही लिखा था ! हा भगवन् ! यह क्या किया ! क्या मेरेस्वामी उन्मत्तहोगये?महारानाने हँसकर कहानहीं प्रिये! मैं उन्मत्त नहीं हुआ हूँ उन्मत्त होता तो क्या तुच्छ भोगविलास की आशा से जीवनव्रत को छोड़ अधीनता स्वीकार करके बादशाह के पास सन्धिकी प्रार्थनाकरता ? इतने में चन्द्रावत कृष्ण और कुमार अमरसिंह आदिभी तहाँ आपहुँचे, महाराना ने वीर चन्द्रावत् से कहा सरदार ! आज तुम्हारी प्रभुभक्ति की परीक्षा करताहूँ, यह तलवारलो और अपने अभागे प्रभूको इसलोक से बिदादो, इतना सुनतेही सरदार अचरज से आँखे फाडेहुए नीचेको देखते रहगये, महाराना फिर तैसे ही उन्मत्तभाव से कहनेलगे कि हा ! अपने हाथसे अपने घरमें आग लगाय कर घरके स्वामीकोचेत हुआहै,जान कारी में विष पीकर प्रतापसिंह के हृदय में आग फैली हुईहै, भगवन् ! मेरी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट क्यों हुई ? मैं चिरशत्रु बाद-शाह के पास अवनत क्यों हुआ ? क्यावह दूत अब दिल्ली पहुँचगया होगा ? अबतो महाराना के उन्मत्त होने का का-रण सब समझगये और मनहीमन में हाय ! हाय करने लगे सरदार ने कहा महाराज ! पहुँचनातो क्या कल दूतके लौटने की आशाथी, प्रभो ! आप घबड़ाते क्यों हैं, यदि आपसन्धि को अपमान कारक समझतेहैं, तो फिर दिल्ली को दूत भेज

कर निषेध कराभेजेंगे । प्रतापसिंह ने कहा सरदार यहतो विषयी लोगोंकी बातें हैं, परन्तु मैं इससमय की ज्वालाको कैसे दूर करूं ? हाय ! अब मृत्युके सिवाय मेरे इस पापका और कोई प्रायश्चित्तही नहीं है । सरदार ! अब मैं तुम्हारा प्रभु नहीं रहा, प्रभु होतातो क्या तुम मेरी आज्ञा का पालन करने से हटते ? यदि तुममेरे सच्चे भक्त होतो यह तलवार उठाओ और प्रहार करके मुझे इसलोक से विदादो। सरदारने रोते२कहाकि-प्रभो ! यदि आप ऐसा साहस करेंगेतो हम किस का मुखदेखकर असाध्य वीरव्रतका पालन करेंगे ? कुमारों को वीरमन्त्रके साधन की शिक्षा कौन देगा ? इस अनाथ परिवार की कौन रक्षा करेगा ? महाराना ने कहा क्या अबभी परिवार यह परिवारही तो मेरा काल बना है, परिवारकी माया से ही मैं नागपाश में बँधाहूँ नहींतो क्या मैं प्राणरहते बादशाह के सामने मस्तक नवाने का विचार करता ? इतनेहीमें दूर से दौड़ते हुए घोड़े के आनेकी आहट प्रतीत हुई सबने उत्कंठित होकर उधरहीको देखा, देखते २ घुड़सवार दूत पास आपहुँचा सबही चित्त में घबड़ाकर नीचेको मस्तक करे हुए खड़े रहे। दूतने आकर महाराना को प्रणाम किया और महारानाके हाथ में एक पत्र दिया, महाराना ने कातर कंठसे कहा इसको पढ़ूँ हीक्या ? इस में मेरा मृत्यु बाणही तो होगा ? बादशाहने कृपा करके सन्धि करना स्वीकार करलिया यही तो समाचार होगा ऐसा कहकर घृणाके साथ उसपत्रको फेंक दिया। दूतने कहा महाराज ! यह पत्र बादशाहका नहीं है किन्तु बीकानेरराज पृथ्वीराज का है। महाराना ने चौंक कर कहा क्या यह बादशाह का नहीं है ? क्या बादशाह ने तिरस्कार करके मेरे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया ? शीघ्र

घताओ, ऐसे होने से भी मुझको कुछ चैन होगा, शत्रु का तिरस्कार करना भी मुझको आनन्द देगा, परन्तु शत्रु की दयाको मैं मृत्यु समान समझता हूँ, दूत ! सब समाचार शीघ्र कहो, तुम्हारा मुख कुछ प्रफुल्लसा दीखता है, क्या तुम मेरे मनकी सी ही बात कहोगे? क्या सत्य ही बादशाह ने मेरे पत्र को अस्वीकार किया है ? इसप्रकार महाराना एकसाथ दूत से अनेकों प्रश्न कररहे थे, इतनेंही में कुमार अमरसिंह ने वह पत्र खोलकर महाराना के हाथ में दिया, दूत ने कहा कि-श्रीमहाराज ! बीकानेर राज पृथ्वीराज के इस पत्र को पढकर सब वृत्तान्त जानलेंगे । आपने बादशाह के पास जो पत्र भेजाथा, उसपर पृथ्वीराज ने विश्वास ही नहीं किया, उस को उन्होंने बादशाह के सामने जाली सिद्ध किया, उन्होंने बादशाह से कहा कि–महाराना के किसी शत्रुने यह पत्र जाली हस्ताक्षर बनाकर भेजा है । इतना सुनतेही महाराना के नेत्रों में से टपर आँसू गिरने लगे, और गद्गदकंठ से कहा कि-दूत ! आज तुम्हारे वनवासी प्रभु के पास कुछ नहीं है, जो इनाम दियाजाय, आओ प्राणभर कर एकबार छाती से लगालूं, इतना कह दोनों हाथ फैलाकर महाराना ने दूत को छाती से लगाया, दूतने हाथ जोडकर कहाकि-मेवाड पति का यह आलिंगन इस अधीन को करोडों रुपये से भी अधिक है, आज मैं कृतार्थ होगया, फिर दूत महाराना की चरण धूलि शिरपर चढाकर एक ओर को बैठगया, महाराना ने बडी उत्कण्ठा से उस पत्रको पढना प्रारम्भ किया पढतेर उनका मुखकमल प्रफुल्लित होगया, प्राणों में नयाबल आगया सिंह की समान गर्ज कर कहने लगे कि–जीवन के साथी सरदार, रानी ! अब मैं मेवार का उद्धार बिना किये प्राणों

को नहीं त्यागूंगा, सरदार जरा तुमभी तो पृथ्वीराज का पत्र देखो, सरदार ने पत्र लेकर पढना प्रारम्भ किया।

सोरठा—अकबर घोर अंधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागे जग दातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥ १ ॥
अकबरिये इणवार, दागिल की सारी दुनी।
अणदागिल असवार, चेटक राण प्रतापसी ॥ २ ॥
अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजल।
मेवाड़ो तिणमाह, पायण फूल प्रतापसी ॥ ३ ॥
आई हो अकबरियाह, तेज तिहारो तुरकड़ा।
नमि नमि नीसरियाह, राण विना सहराजवी ॥४॥
चौथो चीतोड़ाह, बाँटो वाजंती तणू।
दीसे मेवाड़ाह, तो शिर राण प्रतापसी ॥ ५ ॥

दोहा—जननी सुत अहाड़ जणे, जइडो राण प्रताप।
अकबर सूतो ही ओधके, जाण सिराणे साप ॥६॥

सोरठा-पातल पाघ प्रमाण, साची सांगा हरतरणी।
रही अभेगत राण, अकबर सूँ वभी अणी ॥ ७ ॥
सोवै सह संसार, असुर पलोलें ऊपरै।
आगे तू निणवार, पोहरै राण प्रताहसी ॥ ८ ॥

(ऐसे २ चौदह सोरठे और दोहे पत्रमें लिखे थे, उनमें से केवल आठही मिले हैं वह यहाँ लिखदियेगये) सबका सार यह है कि—आज अकबररूपी अन्धेरी रातमें सब हिन्दू सोरहे हैं, केवल एक महाराना ही जागतेहुए पहरा देरहे हैं, हिन्दू की सब आशा हिन्दू केही ऊपर हैं, इस समय महाराना उनसबों को त्यागेदेते हैं, हमारे शिरधरों में अब एक महाराना ही हैं, यदि महाराना न होते तो बादशाह सभीको एक सूत्रमें पोडालते, हमारी जातिरूप बाजार में अकबर एक व्यापारी

हैं, उन्होंने सभी को मोल लेलिया है, केवल उदयसिंह के पुत्र को नहीं खरीदसका है, सभीने साहस खोकर नौरोजे के बाजार में अपना २ अपमान देखा है, केवल हमीर के वंशधरने ही आजतक नहीं देखा, पुरुषार्थ और तलवार ही प्रताप का अवलम्ब है, इसी से वे क्षत्रियत्व की रक्षाकरते हैं,बाजार का वह व्यापारी सदा जीवित नहीं रहेगा, एकदिन इस लोक से अवश्य चलबसेगा, उस समय हमारी जातिके सभीलोग त्यागीहुई भूमिमें राजपुत्रत्व का बीजबोने के लिये प्रतापसिंह का आश्रयलेंगे, मुगलों के अन्त में फिर इस अधोगत राजपूतानें में उनको ही वीरताका बीज बोनाहोगा। समय २ पर एक दिन सबही नष्ट होजायँगे, केवल कीर्ति और नाम रहजायँगे, आजतक प्रतापसिंह नेही राजपूतों के नामको रक्खा है, अवभी सब उन्ही के मुखकी ओर को ताकरहे हैं, अतएव वह फिर भी राजपूतों की मान मर्यादारख कर धन्य हों, यही इस अभागे भक्तकी प्रार्थना है। इस पत्रको सुनते ही सब उत्साह से मतवाले हो उठे, महाराना भी आनन्द से मत्तहोकर कहउठे अवमें असह्य प्राणों कोभी धारकर एकवार फिर साहस करके देखता हूँ कि-विधाता मेवाड़ के भाग्य में क्या करते हैं। फिर दूतने एक २ करके दिल्ली की सब बातें सुनाईं, सब सुनकर महाराना कहनेलगे कि–उन महात्मा राजपूत कवि के बल से ही आज मेराव्रत अटलरहा है, उन्होने बादशाह के यहाँ बन्दी रहकर भी मेरेसच्चे बन्धुका काम किया है, सच्चे स्वदेश भक्त का काम किया है, मैं इस जीवन में उनके ऋणको नहीं चुकासकता। आज देवस्वभाव महारानाने फिर शुभमुहूर्त्त में देवताओं की समान हृदय और मनको पाया, इसका फल जो कुछहुआ, उसी को अब संक्षेप से कहकर हम इस वीर कहानी को समाप्त करेंगे।

इक्कीसवाँ परिच्छेद.

जब बादशाह ने समझा कि–प्रतापसिंह की सन्धि की प्रार्थना आदि केवल धोखेबाज़ी है और जब वह दूत भी सब की आंखों में धूल डालकर निकलगया तब बादशाह का क्रोध और दूना बढगया तथा बड़ेजोश में भरकर अपनी फौजको आज्ञा दी कि–जाओ आरावली की गुफा और वनों को पचा२ करके ढूँढो और देखो वह काफिर प्रतापसिंह कहां छुपा है ? मैंने पहिले भी कहा था और अब भी कहता हूँ कि–जो कोई प्रतापसिंह को पकड़कर गिरफ्तार करके लावेगा उसको ईनाम में बादशाहत का दशवां भाग दूँगा हुक्म पाते ही बादशाह की फौजने आरावली पर आकर जरा २ करके ढूँढा परन्तु महाराना का कहीं पता न मिला, अन्त में कुछ थोड़े से मुगल बड़े भारी ईनाम की आशा से प्राणों की बाज़ी लगाएहुए महाराना को खोजते२ उस जबरा के भयानक जंगल में पहुँचगये, वहां दो भीलों को बेखटके बातचीत करते देख अनुमान किया कि प्रतापसिंह यहां ही परिवार सहित कष्ट के साथ समय बितारहे हैं और तत्काल उन थोड़े से मुग़लों ने ही महाराना को घेरना चाहा, उन दोनों भीलों में से एक तो मुग़लों के हाथ से मारागया, दूसरे ने हांपते२ तीर की समान दौड़कर महाराना को खबर दी। उससमय कुछ भील तो वृक्षोंकी शाखाएँ और पत्थर लेकर खड़े होगये, और महाराना तथा जीवन के साथी सरदार चन्दावतकृष्ण और अमरसिंह ने धनुषबाण लेकर मुग़लों का सामना किया,सब एक२ओरको खड़ेहोगये,इधर शत्रुओं ने दीन२ करके उस वनको चारों ओर से घेरलिया, परन्तु जब उन्हों ने देखा कि–चारों ओर कहीं भी वन के भीतर

जाने की ठीक नहीं है तो मुगलों ने भी अपनी सेनाको चार भाग में बांटकर तलवार चलानेलगे, महाराना के दुर्दैवसे उससमय उनका परिवार उस शत्रुओं से घिरेहुए वन में एक वृक्ष के तले बैठा था, भीलों ने मुगलों के ऊपर पत्थरों की वर्षा करना प्रारम्भ की, उस से दशवीस मुगल जखमीहुए, एकाधमरा, धनुषबाणों ने भी कुछ इससे अधिक काम दिया उधर मुगलों के हाथ से भी दशपन्द्रह भील घायल हुए और एकाध मारागया परन्तु जिन दो ओर वीर चन्दावत और महाराना रक्षा कररहे थे उधर उन्हों ने मुगलों की सेनाको केले की समान कचर कचर काटकर मैदान साफ करदिया,उधर कुमार अमरसिंह ने भी अनेकों मुगलों को काटकर अपनी ओर की रक्षा की परन्तु आपभी घायल होकर रुधिर में न्हागये, इसप्रकार प्रायः सबही मुगल मारेगये, दो एक बड़े कष्ट से अपने प्राणों को बचाकर भागने पाये, उन्हो ने जाकर बादशाह को समाचार सुनाया कि बडी खोज करनेपर शत्रुका पता पाया था, तथापि हमारा दल कम था इसकारण उनको बन्दी न करसके, किन्तु उन लड़ाके राजपूतों के हाथसे हमारे ही सब सैनिक मारेगये, यह सुन बादशाहको बड़ा दुःख हुआ और तत्काल एकसहस्र मुगलों को फिर जाने की आज्ञा दी, वह सहस्र मुगल बादशाह की आज्ञानुसार बहुत ही शीघ्र उस वन में पहुँचकर प्रतापसिंह को खोजनेलगे, परन्तु कहीं पता नहीं लगा। प्रतापसिंह उस लड़ाई के दूसरे दिनही चन्दावत् से कहनेलगे कि-सरदार! अब यहां रहना ठीक नहीं है, मुगलों ने यहां का भी पता पालिया, हा! कहांजाऊँ? विशाल मेवाड़ के पहाड़ जंगल और गुफाओं में भी मेरे लिये स्थान न रहा क्या मुझे सारी पृथ्वी

पर ही बैठने को स्थान नहीं मिलेगा ? चलो सरदार राजपूताने की मरुभूमि के पार होकर, सिंधनद की रितेली भूमि में चलें, तहां एक टापू है, कुछदिनों तहां ही समय वितावेंगे, आशा है वहां मुगल मेरा पीछा नहीं करेंगे, सरदार इतने दिनों में आज मुझको निश्चय होगया कि अब मेरी सकल ऊंची आशाएँ आकाशके फूलों की समान दुराशा होगई, मैंने राजपूतोंके सकल सुख सौभाग्यको नष्ट करडाला। सरदारने कहा—महाराज! धीरज रखिये, घबड़ाहट को दूर करिये, चलिये सिन्धनद के टापू में ही चलकर कुछ अनुष्ठान करेंगे, देखें विधाता के मन में और क्या है ?, तदनन्तर महाराना छोटे २ बालकों को लेकर अभागी पद्मावती का हाथ पकडे हुए अपने चित्त से जन्मभर को मेवाड़ से विदा हुए, कुछ दूर चलकर महाराना खडे होकर चन्द्रावत् से कहने लगे कि—सरदार! तुम इन सब को लिये हुए कुछदेर ठहरो मैं आरावली की इस ऊँची चोटीपर चढ़कर चित्तौर को देखलूं, हा! आज मेरी चित्तौर के उद्धार की कल्पना भी नष्ट होगई, एक पहाड़ की चोटीपर चढ़कर आँसूभरे नेत्रोंसे चित्तौरकी ओर को देखते हुए महाराना कहने लगे कि—मातः जन्म भूमि! आज तेरे चरणों से सदा के लिये विदा होता हूँ, मेरा जीवनका अभिनय तो पूरा ही होगया अब यदि जन्मान्तर में भी इसी हृदय को लेकर तेरे चरणों में स्थान पाऊँगा तो फिर एकवार दर्शन करूँगा, फिर तहाँ से उतरकर चन्द्रावत् के पास आये और सब परिवार को साथ लेकर सिन्धनद की ओर को चल दिया। कुछ आगे चलकर महारानाने जहाँ तक दृष्टि डाली—वृक्षहीन स्थानहीन रेती तेजधूप से जल रही थी, हाय आज इसी अग्नि समान तपीहुई रेती को, ऊपर से सूर्य की कड़ीधूप सहते हुए महाराना को विना किसी सहायता के पैदल ही परिवार सहित, पार करना पडेगा, परन्तु कुछ आगे को बढ़ने

परभी उस कोमल राजपरिवार को, उस पैरोंमें फफोड़े डाल-नेवाली रेती के पार जानेका कोई उपाय न देखकर महाराना और सरदार चन्दावत आँखें फाड़े हुए चारों ओर को ताकने लगे, इतने ही में उन्होंने विधाता के साक्षात् आशीर्वाद रूप एक पुरुषको देख पाया, वह भी मानो उनका परिचित था, वह दूरसे महाराना को देखते ही रोता हुआ शीघ्रता से उधर को आरहा है, महाराना भी चुपचाप उधरही को देखते रहे कुछ देर में वह पास आकर पैरों में गिरपडा और हिचकी बाँधकर रोते २ अटकते हुए शब्दों में कहने लगा कि-मेवाड के मकाश ! राजपूतों की आशा के अवलम्बन ! महाराना यह लो मेवाड का अन्तिम सहारा । इतना कह उसने पीछेसे आनेवाले सेवकों से बहुत साधन लेकर महाराना के चरणों में अर्पण करा । महाराना ने चकित होकर कहा-मिय भामा शाह ! तुमने मुझ अभागे का पता कैसे पाया और वह असं-ख्य धन भी मुझे क्यों देते हो ? बूढे मंत्रीने रोते २ कहा-महा-राज ! मेवाड में जो कुछ है वह आपका ही है । महाराना ने कहा-मन्त्री ! जब मैं मेवाड का स्वामी था उसदिन यह बात ठीक थी, इससमय मैं मेवाड का स्वामी नहीं हूँ,किन्तु आश्रय हीन, कोड़ी २ को मुहताज अधम भिखारी की समान होकर स्त्री पुत्रों का हाथ पकडे हुए असहाय विशाल मरुभूमिके पार होने की चेष्टा कररहा हूँ, इस लिये जाओ मन्त्री ! जिसका धन है उसीको अर्पण करो । भामाशाह ने कहा-मभो महा-राना ! आशा है अब आप अपने इस बूढे मंत्रीको अधिक न रुलावेंगे, इसधन को स्वीकार करिये, आपका सदा का सेवक आज मभुका धन मभुको ही समर्पण करता है । महाराना ने कहा-मंत्री ! मैं समझगया आज मेवाड के दुःख से तुम्हारे माण कातर होरहे हैं,ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे, परन्तु तुम्हारे धन पर मेरा क्या अधिकार है और मैं कैसे लेसकता हूँ ? मंत्री

ने कहा महाराज! आपसे राजनीति चतुर पुरुषको मैं क्या समझा सकताहूँ, सब दशा में प्रजाके धनपर राजाका अधिकार और मैं तो मेवाड के उद्धार के लिये अपनी इच्छा से दे रहा हूँ, फिर न लेने का क्या कारण है ?, इसपर बहुतदेर विचार कर महाराना ने धीरे से कहा कि-अच्छा मंत्री मैं तुम्हारे मनोरथ को पूरा करूँगा, परन्तु मेरे या मेरे परिवार के खरच में इस में से एक कौड़ी भी नहीं उठेगी, तुम्हारा धन मेवाडके उद्धारमें ही लगेगा, भगवान् तुम्हारे धनसे ही मेवाड़का उद्धार करें तुम्हारे धन से ही मुगलोंका दर्प दूरहो, तुमही मेवाड के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से 'मेवाड के रक्षक' लिखेजाओ।

क्या सत्य ही मेवाड के ऊपर विधाता को दया आगई? क्या मेवाड़ के पहिले दिन लौट आये ? जब विपत्ति की परम काष्ठाको पहुँचकर वियावान् छायाहीन तचतीहुई रेती में स्त्री पुत्रादि को साथ लिये निराश प्राण महाराना जिस समय चुपचाप ऊपर को मुखकरे चारों ओर सूनमान देख रहे थे उसी समय विधाता के प्रत्यक्ष आशीर्वाद रूप मंत्री भामाशाह ने वहाँ अचानक आकर महाराना को इतना धन अर्पण किया कि-जिस से वह पच्चीस सहस्र सेना को बारह वर्षतक रखसकते थे तो क्या अब भी मेवाड के दिन फिरने में कुछ सन्देह है।

बाईसवाँ परिच्छेद।

महारानाने उस धनकी सहायता से थोड़ेही से समय में फिर सकल सामन्त, सरदार और राजपूतों की सेनाको इकट्ठा करलिया, फिर मेवाड़ के उद्धार का संकल्प किया, उस समय शक्तसिंह भी आकर भाई के साथी होगये। मुगलोंने समझ लिया था कि-सर्वस्वहीन वनचारी प्रतापसिंह आरावली के घोर वनमें भी कहीं बैठने को स्थान न पाकर मरुभूमि के

पार किसी और राज्य में चलेगये हैं, इसकारण वह निश्चिन्त ताई से भोग सुखमें आसक्त होकर समय बितानेलगे, युद्ध के उद्योग की ओर कुछ ध्यान ही नहीं रहा, अचानक एक दिन मुगलोंका वह सुखस्वप्न भंगहोगया, उन्होंने एकदिन भय और आश्चर्य के साथ सुना और देखाकि–पृथ्वी आकाश को कँपाकर "हरहर महादेव" करतेहुए असंख्यों राजपूतों ने मेवाड़ को चारों ओर से घेरलिया है, एक साथ मुगलों के मनमें भयछागया और वह अचंभा माननेलगे कि–प्रतापसिंह तो बहुत दिनहुए सिन्धनद की ओर को चलेगये थे, फिर यह स्वांग किसने करडाला ? । देवीर स्थान में राजपूतों की राजलक्ष्मी लौटकर आई, पहिले राजपूतोंने देवीर परही धावाकिया वहाँ मुगलोंका सरदार शाहवाजखाँ सेनाको लियेहुए रहता था, महाराना की भयानक मूर्चिको देखकर उस का दिल दहलगया, एक दिनमें ही सहस्रों सेना सहित उस को मारकर देवीर स्थान लेलिया, इस युद्धमें सक्तसिंहने भी बड़ी वीरता दिखाई, शाहवाजखाँ की कुछ सेना प्राणबचाने के लिये अमैत नामक स्थान में जा छुपीथी, महाराना की सेनाने तहाँ भी पीछा किया और एक २ को काटकर चिरकाल का क्षोभ मिटाया। फिर महारानाने अपनी राजधानी कमलमीर कोभी लेलिया, उसमें एक अब्दुल्ला मुगल रहता था वह महाराना के प्रचण्ड तेजको न सहकर सेना सहित मारागया। इसप्रकार थोड़ेही दिनों में महारानाने अपने वत्तीस किलोंपर अधिकार जमालिया। बादशाह इस समाचार को पाकर भी कुछ न करसके, क्योंकि–वह युद्ध के लिये उद्योग ही करतेरहे और महारानाने जादूसा करके एक वर्ष के भीतर ही सारी मेवाड को अपने हाथ में करलिया। फिर उन्होंने अपने परमशत्रु स्वदेशद्रोही मानसिंह के राज्यपर चढाई करके वहाँ लूटकराई और अपने खजाने को भरलिया, तदनन्तर अपने पिताके बसाए उदयपूर कोभी लेलिया, इसप्रकार छोटे

बड़े बहुत से किले नगर और राजधानी अपने हाथमें करलीं, देखते देखते वह सारी मेवाड के प्रबल प्रतापी स्वामी बनगये, इसप्रकार सब राजस्थान का उद्धार हुआ, फिर मुगलों का दल मेवाड में नहीं आया, परन्तु अपनी परमप्रिय पूर्व पुरुषों की कीर्त्तिरूप चित्तौर का उद्धार न करसके, इसकारण महाराना विजयी होकर भी अपनी शेष अवस्था को सुखसे नहीं बितानेपाये, मेवाड पति के हृदय को शान्ति न हुई। एक दिन महाराना उदयपुर के ऊँचे महलपर बैठेहुए टकटकी लगाए चित्तौर की ओर को देखतेहुए विचारनेलगे कि—बालकपन में सिंहासन पाने से अबतक, मस्तकपर कितने कालचक्र घूमगये, परन्तु सब स्वप्नसा दीखता है, चित्तौर का उद्धार अभीतक नहीं हुआ, ऐसे अनेकों विचार करते २ उनका माथा घूमनेलगा, एकायकी प्राण अकुला उठे, सारा शरीर कांपकर घूमनेलगा और आंखों के सामने अँधेरा आकर मूर्छित होगये। उस मूर्छा की दशामेंही उन्होने यह अद्भुत स्वप्नदेखा कि—चित्तौर की अधिष्ठात्रीदेवी उनके सन्मुख प्रकट होकर कोमल मीठे स्वरमें कहरही है कि—"बेटा! भयनकर, नेत्र मलकर देख, तू ध्यान, ज्ञान, जप, तप, आहार, विहार में, रातदिन तन्मय होकर जिस की भावना करताथा वह मैं आगई, बेटा! दुःख न मान, निराशमत हो, एक प्रकार तेरा व्रत सफल होगया, मुगलोंके ग्रास से चित्तौर का उद्धार न हो परन्तु तूने अपना काम करलिया, तूने मेवाड़ में जिस बीजको बोया है शीघ्रही इससे एक बड़ा भारी वृक्ष उत्पन्न होगा और वह फलफूल कर सब के चित्तों को आनन्द देगा, परन्तु तेरी आयु अब इसलोक में अधिक दिनों की नहीं है, इसकारण, तू उस स्वर्गीय दृश्यको नहीं देखसकेगा, तेरा पुत्र अमरसिंह तेरे स्वाधीनताके मन्त्र से

दीक्षित होकर तेरे व्रतका उद्यापन करेगा, तूने जिस धर्म और मनुष्यत्वका सञ्चय किया है इसको संसार जपकी माला पर गावेगा। इसके सिवाय और सुन बेटा! भारतवर्ष में हिन्दू और मुसलमानों को एकता के सूत्र में बाँधनेके लिये, चिरकालतक शान्ति और सभ्यतास्थापन करने के लिये दूरके श्वेत द्वीपसे एक महानजाति के श्वेतकायोंका दल शीघ्रही यहां आवेगा, वही अन्तमें भारत के अधीश्वर होंगे, उन में सकल गुण शोभा पावेंगे, उनके विराट राज्यमें सूर्य अस्त नहीं होगा ज्ञान, गुण, और कार्यकर्त्तापन होने से वह पृथ्वीभरमें अग्रणी गिनेजायँगे, अज्ञान मुगलोंने तुम्हारी मर्यादाको नहीं समझा न सही, परन्तु वह ज्ञानवान् न्यायवान् सभ्य राजराजेश्वर तुम्हारे महत्त्व, और इतिहास को स्पष्ट अक्षरों में घोषित करेंगे उनका राज्य अक्षय और चिरस्थायी होगा। (चित्तौर की अधिष्ठात्री देवीकी वह भविष्यद्वाणी आज अक्षर२सत्य होरहीहै,अंगरेजों की कृपासे आज भारतवासी सबप्रकार का सुख भोगरहे हैं) मूर्च्छा दूर होनेपर महाराना उठे, धीरे २ कुटीमेंगये और अपनी तृणों की शय्यापर सोरहे। फिर वह उस शय्यापर से न उठसके। आज अन्तिम दिन है,राजके प्रधान२ सरदार आदि प्रतिष्ठित लोग, महाराना की शय्याको चारों ओर से घेरेबैठे हैं, सबही चुपचाप नीचे को मुखकरे आंसू बहारहे हैं, अमरसिंह मुमूर्षु पिताके सामने हाथजोड़े खड़े हैं, महाराना उस कष्टदायक अन्त समय भी टूटेफूटे शब्दों में चित्तौर २ कहने लगे, सामन्त सरदार चुपचाप सुनतेरहे, उनका हृदय दुःख युक्त शब्दों को सुन २ कर घायल होनेलगा, क्षणभर के बाद महारानाने नेत्रखोले, अमरसिंह को देखकर एक लंबा श्वासलिया, उस समय बूढ़े सरदार चन्दावत् ने कांपतेहुए कण्ठ से कहा—महाराज! आप इतने दुःखित क्यों होते हैं? किस

कारण आपके योगमग्न आत्मा की शान्ति में बाधा पड़रही है ? देव ! हम सब आपके सामने खड़े हैं, कहिये किस आज्ञा का पालन करें ?, महाराना ने धीरे से कहा-सरदार ! मैं बड़ा दुःखी हूं, निर्विघ्नता से मृत्युका सुखभी मेरे भाग्यमें नहीं है ! क्या अमरसिंह मेरे जीवन व्रतका उद्यापन करसकेगा ?, कुमार अमरसिंहने घुटने नवाकर हाथ जोड़हुए काँपते स्वर में कहा पिताजी ! इस अधम सन्तान का अविश्वास न करिये, मैं ही आपके व्रतका उद्यापन करूंगा । महाराना ने कहा-यह वेश, यह कुटी और यह तृणशय्या ऐसीही रहेगी क्या ?, कुमारने कहा पिताजी ! ऐसा कौन कुलांगार होगा जो पिता की अन्त समय की आज्ञाका पालन न करै ? मैं धर्मको साक्षी करके कहता हूँ कि-जबतक चित्तौर पर अधिकार न करलूंगा, एकभी महल न बनवाऊँगा, शय्यापर न सोकर तृणोंपर सोऊँगा, वस्त्रावरण का ठाठ नहीं रक्खूंगा, इतना सुन महाराना के इशारा करने पर कुमार ने अपना शिर उन के समीप को किया, प्रतापसिंह ने मस्तक पर हाथ फेर आशीर्वाद देकर कहा कि-अबमैं निश्चिन्त होकर अपने प्राणों को त्यागसकूँगा, फिर महाराना सरदार चन्दावत् की ओर को देखकर मुसकुराये, सरदार ने उस मुसकुरान का अर्थ समझकर काँपते कंठ से कहा-महाराज ! इस वृद्ध के जीवित रहते कुमार किसीप्रकार पिता के व्रत को नहीं लाँघसकेंगे, मैं इनको अपनी आँखों के सामने रक्खूंगा, इतना सुन महाराना के मुखपर अपूर्वहास्यकी रेखा दिखाई दी और उस मरणकालके म्लान मुखपर स्वर्गीय लावण्य दमकनेलगा, उस हास्य और उस लावण्यके पूर्णरूपसे विद्यमान रहतेहुए उन स्वदेशप्रेमी महापुरुष के दोनों नेत्र जीवन के मध्यान्ह में ही मुँदगये ।

समाप्त ।